इस्लाम: अरब साम्राज्यवाद

अनवर शेख

प्रकाशक

दी प्रिन्सीपलिटी पब्लिशर्स

पो. ओ. बोक्स नं. 918

कार्डिफ, ग्रेट ब्रिटेन

CF 52 NL

अनवर शेख
कृत



अरब साम्राज्यवाद

इस्लाम एक अरब साम्राज्यवाद

© अनवर शेख 1998

Rs60/-

सभी अधिकार सुरक्षित। इस पुस्तिक का कोई भी भाग, किसी भी प्रकार से बिना लेखक/प्रकाशक की अनुमति के बिना न छापा जाए।

ISBN—0951334980

प्रकाशक
दी प्रिन्सीपलिटी पब्लिशर्स
पो. ओ. बाक्स न. 918
कार्डिफ, ग्रेट ब्रिटेन
CF 5 2 NL

प्राक्कथन

यदि अरब राज्य के पैगम्बर मुहम्मद (प्रभु उन्हें शान्ति दे) का निष्पक्षता के साथ मूल्यांकन किया जाए तो निश्चित ही वे एक सर्वोच्च राष्ट्रीय नायक के रूप में सफल सिद्ध होंगे जो कभी भी किसी राष्ट्र में पैदा हुआ हो। हालांकि उनकी महानता एवं सफलता पैगम्बरवाद की कल्पना का पूरी चतुराई से लाभ उठाने में छिपी हुई है, जो कि मध्यपूर्वी संस्कृति की एक अभिन्न परम्परा रही है।

पैगम्बरवाद का आधार (रिवीलेशन) ईश्वरीय प्रगटीकरण अथवा खुदाई इलहाम का सिद्धान्त है। इसका अर्थ यह है कि खुदा मनुष्य मात्र से इतना अधिक प्यार करता है कि वह उन्हें नरक या दोज़ख़ की यातनाओं से बचाने के लिए उनका मार्ग दर्शन करना चाहता है। इस मानव कल्याणकारी कार्य के बदले में खुदा लोगों से केवल उसके प्रति पूरे समर्पण की मांग करता है यानी वह चाहता है कि सभी मनुष्य खुदा की इबादत या पूजा करें और उसके नियमों का, उनकी सच्चाई, उद्देश्य और औचित्य पर कोई शक़, सुबह या सवाल उठाए बिना अवश्य पालन करें।

इस खुदाई इलहाम का माध्यम वह मनुष्य पैगम्बर कहलाता है जिसके माध्यम से खुदा से अपनी इच्छा प्रगट करने की आशा की जाती है। वह पृथ्वी पर खुदा का दूत या एजेन्ट मात्र होता है क्योंकि खुदा को, उसके निराकार होने के कारण, न तो देखा ही जा सकता है, और न उससे सीधा सम्पर्क ही किया जा सकता है। ऐसे हालातों में, पैगम्बर के शब्दों को ही खुदा के शब्दों की श्रेणी में मानना प्रारम्भ हो जाता है, क्योंकि लोगों का खुदा के साथ सीधा सम्पर्क न होने के कारण, पैगम्बर के ही साक्षात् शब्द मुख्य, और खुदा का सन्देश, जो पैगम्बर तक ही, सीमित होता है, गौण हो जाता है। परिणामस्वरूप पैगम्बर, जो प्रत्यक्ष में अपने को खुदा का सबसे विनम्र सेवक होने का दावा करता है, खुदा-पैगम्बर सम्बंधों में सबसे प्रभावकारी शक्ति के रूप में सामने आ जाता है। और यही वह व्यक्ति है जिसके पास स्वर्ग या जन्नत जाने के

दरवाज़े की चाभी होती है। इसीलिए जो भी व्यक्ति जन्नत जाने का हक़दार बनना चाहे, उसका पैगम्बर में पूरा विश्वास होना बहुत जरूरी है। व्यवहार में असलियत यह है कि जो कोई केवल खुदा में ही विश्वास करता है, वह ईमानवालों की श्रेणी में नहीं माना जा सकता है। इस्लामी भाषा में वह तो केवल ईश्वर विश्वासी है, और उसे नरक या दोज़ख में जाना ही चाहिए, भले ही वह कितना ही नेक इंसान क्यों न हो! यानी पैगम्बर में पूर्ण विश्वास, ईश्वर विश्वास से भी अधिक आवश्यक व बढ़कर है।

इस्लाम की इन्ही मान्यताओं के कारण पैगम्बरवाद की सच्ची क़लई खुल जाती है, क्योंकि यदि पैगम्बरवाद का मुख्य उद्देश्य खुदा की महिमा को बढ़ाना और लोगों का सदाचार के लिए मार्ग दर्शन करना होता तो जन्नत जाने के लिए, पैगम्बर में विश्वास होने की अनिवार्यता तथा खुदा में विश्वास अपर्याप्त क्यों ? इसके अलावा यदि पैगम्बरपन का उद्देश्य केवल धर्म परायणता को फैलाना है, तो फिर किसी सदाचारी व्यक्ति को नरक में भला कैसे ढ़केला जा सकता है ? क्या सिर्फ इसीलिए क्योंकि वह पैगम्बर में विश्वास नहीं करता है ? इससे भी अधिक चौंकाने वाली बात तो यह है कि पैगम्बर के बारे में, खुदा भी स्वयं बेबस हो जाता है क्योंकि वह भी केवल उसी में विश्वास करनेवालों के लिए कुछ भी नहीं कर सकता है।

जब पैगम्बरवाद का मुख्य उद्देश्य ही खुदा की जगह पैगम्बर को अधिक महत्त्व देना मात्र है, और उसे ही ऊपर उठाना है, तो इससे सुस्पष्ट है कि उसके लिए खुदा या उसके मार्ग दर्शन की कोई जरूरत नहीं है। यह तो केवल मध्यपूर्वी और सेमीटीय क्षेत्रों की, आध्यात्मिकता की आड़ में, एक राजनैतिक तरीका नज़र आता है, जो कि इसके कर्त्ता-धर्त्ता पैगम्बर को अपनी सत्ता की महत्त्वाकांक्षा को पूरी करने में मदद करता है।

वास्तविकता तो यह है कि पैगम्बरवाद के सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य जागरूक और चिन्तनशील मनुष्य के दिल और दिमाग़ और उसकी चेतना शक्ति, जो कि स्वतंत्र चिन्तन, जिज्ञासा और सामाजिक प्रगतिशीलता का स्रोत है, पर अंकुश लगाना मात्र है। साथ ही पैगम्बरवाद मनुष्य पर भाग्यवाद का पूरा प्रभुत्व लादता है, मानो कि मनुष्य एक स्वतंत्र चिन्तनशील प्राणी नहीं, बल्कि एक बोझा ढोनेवाला गधा मात्र है।

वास्तव में पैगम्बरवाद का सिद्धान्त लोगों पर प्रभुता जमाने या हावी होने

का एक हथियार मात्र है, जो कि किसी भी मनुष्य को, पैगम्बरवाद के बहाने, अपने सामाजिक और राजनैतिक परम्परा में सर्वोच्च स्थान पाने को प्रेरित करता है। यद्यपि विश्व के सभी विजेता, राष्ट्रों के अध्यक्ष या प्रशासक आदि अपनी अल्पकालीन-प्रभुता भावना को प्रगट करते हैं, मगर इस प्रभुता का प्रभाव उसके स्वामी की मौत के बाद ही समाप्त हो जाता है। उसके विपरीत पैगम्बर से जुड़ी हुई आध्यात्मिकता का प्रभाव लम्बे समय तक बना रहता है क्योंकि वह पैगम्बर के मरने के बाद भी अपनी कबर से, अपनी पवित्र पुस्तकों में दिए गए उपदेशों व सन्देशों के माध्यम से अपने अनुयायियों के दिल व दिमाग पर राज्य करता रहता है।

सामाजिक एवं धार्मिक नियमों का अस्तित्व, परिवर्तन के सिद्धांत पर निर्भर करता है, क्योंकि कोई भी सामाजिक नियम स्थायी और शाश्वत नहीं होता है, जब तक कि लोगों का कोई ऐसा वर्ग न हो जो उसका सम्मान करता हो और जो उसको अपनाए जाने के लिए प्रयत्नशील रहता हो। ऐसा, विशेषकर ईश्वरीय नियमों के बारे में तो सच है जिनको कि सैकड़ों वर्षों के बाद भी पवित्र और सच्चा माना जाता है, भले ही वे आज की मानवीय समस्याओं से पूरी तरह मेल न खाने वाले ही क्यों न हों। यही कारण है कि मज़हबी कठमुल्ले हमेशा ही कट्टरपंथी और पूरी तरह तर्क के विरोधी होते हैं क्योंकि पैगम्बर एक अत्यन्त प्रभुतावादी-मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। वह देश भर के ऐसे लोगों को अनुयायी बनाना चाहता है जो सदैव अन्ध श्रद्धा से ओत-प्रोत हों तथा उसके सब प्रकार के कार्यों का गुणगान करने के सदैव तैयार रहें। यही वह तरीका है जिसके द्वारा कोई भी पैगम्बर एक निष्ठावान राष्ट्रवादी नेता बन जाता है, जो जानता है कि समाज में उसकी दैवी-स्थिति उसके अपने लोगों की उन्नति अथवा अवनति पर निर्भर करती है। यही कारण है कि एक पैगम्बर अपने कठिन परिश्रम से एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण की कोशिश करता है जिसमें, शुरू से लेकर आख़िर तक, अपने को यशस्वी बनाए रखना भी शामिल होता है।

पैगम्बर मुहम्मद का जीवन भी इस सच्चाई का एक सम्मोहक आदर्श है। उन्होंने तत्कालीन अनेक, बँटी हुई अरबी जातियों को एक संयुक्त राष्ट्र के रूप में पुरोने का कार्य किया, और उन्हें एक महान राजनैतिक आदर्श के लिए प्रेरित किया जिसके फलस्वरूप एक महान अरबी साम्राज्य स्थापित हो सका।

मगर भारतीय उपमहाद्वीप के भ्रमित लोग उसे एक इस्लामी साम्राज्य मानते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि इस साम्राज्य में गैर-अरबी मुसलमानों की स्थिति, ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीयों की स्थिति से, किसी प्रकार भी बेहतर न थी, न है ही। पैगम्बर मुहम्मद मुख्यतया एक राष्ट्रवादी व्यक्ति थे। अरबों का विशुद्ध राष्ट्र बनाने के लिए, यहाँ तक कि उन्होंने सफलतापूर्वक, यहूदियों की सामूहिक हत्या और अरब से देश-निकाला करके, जातीय शुद्धिकरण का रास्ता अपनाया।

इस्लाम, वास्तव में, साम्राज्यवाद का सबसे प्रभावी हथियार है। जबकि अन्य राष्ट्र अपनी राजनैतिक और सांस्कृतिक श्रेष्ठता, अपनी आर्थिक सुसम्पन्नता और सैन्य शक्ति से स्थापित करते हैं, वहीं इस्लाम यह लक्ष्य, पैगम्बर मुहम्मद में पूर्ण आस्था के द्वारा प्राप्त करता है, जो कि स्वर्ग का केवल साधन है जिसमें खूबसूरत कुवांरियाँ, सुन्दर युवक, शराब, शहद और दूध से भरी नदियां हैं। जन्नत के ऐसे सुखों को भोगने के आकर्षण ने सभी गैर-अरबी मुसलमानों को कीड़ा-मकोड़ा-जैसा बना दिया है, जो अरबी-सांस्कृतिक कीर्ति की ज्वाला में खुद को जलाने को सदैव लालायित रहते हैं। इस्लामी विश्वास से उत्पन्न तथा अरबी (कीर्ति की) श्रेष्ठता से प्रभावित, गैर-अरबो मुसलमान इतने अंध भक्त हो जाते हैं कि पिता, अपने ही पुत्र तक को मार डालने को तैयार हो जाता है, यदि वह पुत्र इस इस्लामी आध्यात्मिकता, कानूनी और नैतिक श्रेष्ठता को स्वीकार नहीं करता है। इससे अधिक आश्चर्यजनक बात और क्या हो सकती है कि सारे विश्व के मुसलमान दिन में, कम-से-कम पांच बार, मक्का की ओर मुँह करके साक्षात् दण्डवत या सिजदा करते हैं। सच्चाई यह है कि पैगम्बर मुहम्मद ने, आध्यात्मिकता की आड़ में, यह अद्वितीय सम्मान, अपने देश को प्राप्त कराया जो कि दिखावटी होते हुए भी, आनन्ददायक, उपयोगी और उचित प्रतीत होता है। इतना ही नहीं, यह केवल पैगम्बर मुहम्मद की अद्वितीय राजनैतिक कल्पना शक्ति को ही उजागर नहीं करता है, बल्कि उनकी मानव को प्रभावित करने की योग्यता, रहस्य और जोड़-तोड़ के तरीकों का अध्ययन करने का आश्चर्यजनक अवसर भी प्रदान करता है। ये उपरोक्त सुझाव मेरे लिए केवल कथन मात्र ही नहीं रहे हैं बल्कि मैंने इसे व्यावहारिक स्वरूप भी दिया है, और पैगम्बरवाद की सच्चाई उजागर करने के लिए अनेक रातों की नींद हराम भी की है। क्योंकि मेरे विचार से पैगम्बरवाद का सिद्धान्त, ईश्वर, जिसे सृष्टिकर्त्ता और सम्पूर्ण आदर्श माना

जाता है, की प्रतिष्ठा का खुल्लमखुल्ला अपमान है। इस दृष्टि से, इस्लाम को कोई दैवी-धर्म नहीं माना जा सकता है। विदेशों में बसे अपने अनुयायी मुसलमानों के हितों की उपेक्षा करने और अरबों को लाभान्वित करने की गहरी शाजिश होने के कारण यह नतीजा निकालना उचित होगा कि इस्लाम एक अरब साम्राज्यवाद के हथियार के अलावा और कुछ नहीं है।

क्या कोई ऐसा व्यक्ति है जो इस शोध ग्रंथ में उठाए गए अनेक प्रश्नों का सही अर्थों में उत्तर दे सके ?

कार्डिफ अनवर शेख

1-7-1998

विषयसूची

अध्याय एक

पैगम्बर क्या है?

पैगम्बर मुहम्मद (प्रभु उन्हें शांति दे) विश्व के सभी राष्ट्रीय विभूतियों में श्रेष्ठता, कीर्ति और महानता में सबसे ऊँचे हैं।

हमने यहूदियों के राजा सोलोमन की बुद्धिमत्ता की कहानियां सुनी हैं। परन्तु इससे उनके राष्ट्र को ऊंचा उठाने में कोई लाभ नहीं हुआ है। यहूदियों ने जो कुछ भी प्राप्त किया, वह उन्होंने अपने स्वयं के परिश्रम से प्राप्त किया और नि:संदेह वह भी एक भारी कीमत पर। लेकिन पैगम्बर मुहम्मद की दूरदर्शिता इतनी बड़ी सिद्ध हुई कि जहाँ अन्य राज्य लोलुपों ने विदेशी राष्ट्रों के भाग्य को नियंत्रित करने के लिए हिंसा और खून-खराबे का रास्ता अपनाया, वहीं पैगम्बर मुहम्मद ने अरब साम्राज्यवाद को स्थापित करने के लिए एक ऐसी स्वत: प्रेरित, स्थायी कार्य विधि सुझाई जिसके लिए सैन्य शक्ति, तलवारों और बम वर्षकों की अलग-से जरूरत नहीं है। इस महान शक्तिशाली और चमत्कारी अरबी क्रियाविधि का नाम है 'इस्लाम'। वैसे कहने को तो इसका अर्थ है "अल्लाह के प्रति समर्पण", लेकिन व्यवहार में इसका सही अर्थ है 'अरब की मिट्टी और इसकी सांस्कृतिक परम्पराओं के प्रति पूर्ण आत्मपराधीनता की शक्ति।'

क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि संयुक्त राज्य अमरीका जैसी आधुनिक महान शक्ति, विश्व के गरीब, वंचित और शोषित लोगों को अरबों डालर की मदद के बाद भी उनकी कृतज्ञता पाने में असमर्थ रहा है। लेकिन इस धरती के एक सौ करोड़ से अधिक मुसलमान जो गरीबी की मार भुगत रहे हैं, वार्षिक हज यात्रा के लिए एक-एक पैसा बचाते हैं। हज यात्रा से प्राप्त यही विपुल राशि, पिछले सैकड़ों वर्षों से, साउदी अरेबिया की अर्थव्यवस्था का एक मूल स्रोत रही है। पैगम्बर मुहम्मद के लिए यह अत्यन्त प्रशंसनीय है कि वे मुसलमानों की अगली दुनिया के लिए यह कुछ कर सके।

इससे भी अधिक चौंकाने वाली बात तो यह है कि पैगम्बर की होशियारी ने इस्लामी साम्राज्यवाद की स्थापना को धार्मिक श्रद्धा के आवरण में लपेटकर इतना प्रभावकारी और चकरा देने वाला बना दिया है कि कोई भी व्यक्ति आज तक उसकी गहराई को नापने का साहस नहीं कर सका है। इसी के परिणामस्वरूप यह साम्राज्यवाद इतना ईश्वरीय, रहस्यमय, सफल, शानदार और सर्वोत्तम हो गया है।

आज इस्लाम शोषितों, प्रताड़ितों वंचितों और भटके हुए लोगों के दिलो-दिमागों को जीतने वाला हो गया है। यह असलियत में चमत्कारिकता है कि बुद्धि

को बहकाने की यह प्रक्रिया उन लोगों को किस प्रकार शान्तिदायक सिद्ध हो जाती है जो कि भूख, अज्ञानता और अन्याय से पीड़ित हैं। इस्लाम स्वर्ग मिलने के छलावे द्वारा भी आत्मिक शान्ति प्रदान करता है जो कि आनन्द, स्वर्ग, सुख और पुण्यभागिता के स्थान का प्रतीक है। जहाँ न दुख-दर्द है, और न जहाँ मौत का भय है। इसके विपरीत जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को, सदैव के लिए, तीस वर्ष की उम्र का बने रहने का वरदान मिलेगा, चाहे मरते वक्त व्यक्ति की उम्र कुछ भी क्यों न हो। उसकी प्रजनन शक्ति व पुरुषत्व भी सौ गुना बढ़ जाएगा और महरवान अल्लाह उसे भोगने के लिए अत्यन्त सुन्दर बहत्तर कुंवारियों से कम नहीं दिलवाएगा जो उसकी कामवासना को तृप्त करने को सदैव उत्सुक रहेंगी। मगर इस वायदे को पूरा करने के लिए केवल एक ही शर्त है कि लोग पैगम्बर मुहम्मद में विश्वास करें, और उसकी मातृभूमि अरब देश की आध्यात्मिक श्रेष्ठता को स्वीकार करें। साथ ही वे सभी अरबी नायकों की भी पूजें, तथा अपने-अपने देशों में कुरानी कानून को लागू करवाने की कोशिश करें जिससे कि उनकी अरबी सांस्कृतिक मूल्यों की श्रेष्ठता के प्रति आस्था सिद्ध हो सके।

इस प्रकार के विश्वास का मुख्य परिणाम यह निकला है कि प्रत्येक गैर-अरबी देश का मुसलमान, एक कीड़ा-मकोड़ा-जैसा बनकर रह गया है, जो कि हर समय अपने को, अरबी साम्राज्यवाद की भट्टी में भस्म करने को लालायित रहता है। इसीलिए क्या यह कोई आश्चर्यजनक नहीं है कि एक तरफ जहाँ दूसरे शक्तिशाली राष्ट्रों को अन्य विदेशी राष्ट्रों को जीतने के लिए सैन्य शक्ति तथा बन्दूकों, टेंकों और एटम बमों आदि की जरूरत होती है, वहीं दूसरी तरफ इस्लामी अरबों को ऐसी किसी सामिग्री की जरूरत नहीं पड़ती है। उनके लिए यह सब काम इस्लाम अपनी बुद्धि भरमाने की प्रक्रिया के माध्यम से करता है।

भले ही किसी को यह चमत्कार लगे, मगर सच्चाई यही है कि यह राजनैतिक बुद्धि कौशल का एक अद्वितीय नमूना है। जैसे ही मुहम्मद ने अपने को पैगम्बर होने का दावा पेश किया वैसे ही लोगों ने विश्वास कर लिया कि पैगम्बर तो 'दैवी-शक्ति' होती है यानी वह ईश्वरीय श्रेष्ठता का अंग है, हालांकि ऊपरी दिखावे के लिए वे उन्हें एक मानव के ही रूप में प्रस्तुत करते हैं।

क्योंकि पैगम्बरपन का प्रभाव, अपनी रहस्यमयी पकड़ के द्वारा, अपने अनुयायियों के मानसिक पतन का मुख्य साधन बन गया है, इसलिए यह प्रचारित करना अत्यावश्यक हो गया है कि पैगम्बर तो सामान्य पुरुष है। मगर अपनी श्रेष्ठ राजनैतिक सूझबूझ और महत्वाकांक्षा के कारण वह एक विशिष्ट व्यक्ति है, तथा उसने लोगों के दिलो-दिमाग पर अपनी वीरोचित छवि के द्वारा अपने में दैवत्व स्थापित किया है। इसलिए यह जानना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि आखिर 'पैगम्बर है क्या'?

कुरान की घोषणा है कि *"और तुम्हारे 'रब" की बात सच्चाई और इन्साफ़ में पूरी है। कोई उसकी बातों को बदलने वाला नहीं। वह सुनने और जाननेवाला है"* (6 : 116, पृ. 300)

पुनः कुरान (42 : 7 पृ. 875) तथा बाइबिल यानी ओल्डटेस्टामैंट और न्यूटेस्टामेंट अथवा इस्लामी भाषा में तौरेत, जबर और अंजील आदि परमेश्वर के वचन है। इसलिए इनमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है और उनमें कही गईं सभी कहानियों की सच्चाई पर भी भरोसा किया जा सकता है।

यहाँ यह भी सुस्पष्ट कर देना उचित होगा कि कुरान में यहूदियों और ईसाइयों पर दोषारोपण किया गया है कि उन्होंने अपने धर्म ग्रंथों में मिलावट की है। अतः यह तो एक उच्च श्रेणी का परस्पर विरोध है जिससे कि कुरान की प्रामाणिकता पर प्रश्न चिन्ह लगता है। लेकिन जब हम यह मानकर चलते है कि यहूदी और ईसाई अपने पैगम्बरों और उद्धारकों की पूजा करते हैं तो बाईबिलीय कहानियों, जो कि यहूदी-ईसाई विश्वासों और परम्पराओं का अभिन्न अंग हैं, पर अविश्वास करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता है। ऐसे में वे अपने धार्मिक नायकों को क्यों नकारें जिनकी वे प्रशंसा, और यहाँ तक कि, पूजा भी करते हैं ?

इन परिचायक टिप्पणियों के बाद मैं कह सकता हूँ कि किसी पैगम्बर को एक दैव-नियुक्त व्यक्ति माना जाता है जो कि मानव मात्र को ईश्वरीय आदेश देने का एकमात्र माध्यम होने का कार्य करता है, और इस प्रकार वह पैगम्बर लोगों की निर्दोषिता, धर्म निष्ठा और कर्त्तव्य परायणता का एकमात्र आधार हो जाता है। उसकी नैतिकता इतनी उच्च श्रेणी की मानी जाती है कि वह कोई भूल नहीं कर सकता है। पैगम्बरवाद का यह सिद्धान्त उसे नैतिकता का संवाहक और आदर्श बना देता है।

इतना ही नहीं, इस सैमेटीय परम्परा का समर्थन करने के लिए इसके अनुयायियों ने अनेक कहानियां गढ़ ली हैं जिससे पैगम्बर के चरित्र को एक तेजस्वी, सदाचारी और उत्साह वर्धक का स्वरूप दे दिया गया है। इसने पैगम्बर को ईश्वर, जिसे सदाचारिता का उच्च आदर्श माना जाता है, का प्रतीक बना दिया है।

क्योंकि पैगम्बरवाद का सिद्धांत स्वतंत्र चिन्तन, प्रजातंत्र और मानव एकता में बहुत बड़ी बाधा रहा है, जिसका मुख्य कारण इसकी अत्यन्त रहस्यमयी और विभाजनकारी प्रवृत्ति है, अतः इस पर कल्पनारहित तथा यथार्थता के आधार पर निष्पक्षता के साथ विचार करना आवश्यक हो गया है। पैगम्बरवाद की इस गुत्थी को सच्चाई, तथा एक सीमा तक, विश्वसनीयता, के आधार पर सुस्पष्ट करने के लिए मैं अनेक पैगम्बरों के जीवन वृतों तथा उनके कार्यकलापों की समीक्षा करना चाहूँगा ताकि कोई पाठक मेरे ऊपर यह आरोप न लगा सके कि सत्य का गलत अर्थ

लगाने के लिए मैंने किसी एक विशेष पैगम्बर के चरित्र को ही लिया है। पहले ही बाइबिल की सच्चाई को मानने के कारणों को सुस्पष्ट करने के बाद, अब मैं बाइबिल से जुड़े निम्नलिखित कुछ पैगम्बरों की जीवनियों पर प्रकाश डालना चाहता हूँ कि वे भी मनुष्य थे, तथा गलतियाँ कर सकते थे। लेकिन उनके अनुयायियों ने उनकी शरण में आने के लिए उन्हें 'दैवी पुरुष' मान लिया। ये पैगम्बर हैं—(1) नूह; (2) अब्राहम; (3) लूत; (4) डैविड; (5) सोलोमन और (6) मुहम्मद।

1. नूह

अपने भले आचरण, धर्म निष्ठा की उच्चता और महान विशेषताओं के कारण नूह को नैतिकता का आदर्श माना जाता है। नूह के चरित्र के विषय में पवित्र कुरान ने प्रमाणित किया है कि :

(i) "निसंदेह अल्लाह ने आदम, नूह, इबराहीम की सन्तान और इमरान की सन्तान को सारे संसार के लोगों में चुना" (3 : 33, पृ. 190)

(ii) . . . "नूह को हमने इससे पहले मार्ग दिखाया था; और उसकी सन्तान में दाऊद, और सुलेमान, और अय्यूब, और यूसुफ, और मूसा और हारुन को भी।" (6 : 85, पृ. 295)

(iii) "हमने नूह को उसकी जाति वालों की ओर भेजा था। (उसने अपनी जाति के लोगों से कहा) : मैं तुम्हें साफ़ सचेत करने वाला हूँ।" (11 : 25, पृ. 418)

पैगम्बर मुहम्मद भी नूह को नैतिकता का आदर्श, व एक सचेतक मानता है। इससे नूह की नैतिकता के यश का पता चलता है।

यह भी विचारणीय है कि कुरान का शायद ही कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण कथन हो जो कि स्वयं बाइबिल के संदर्भ के बिना सम्भव हो सका हो। इसके अलावा, बाइबिलीय परम्परा ने कुरान को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है व प्रभाव डाला है, बावजूद इसके कि मुस्लिम विद्वानों ने बाइबिल में मिलावट और भ्रष्टाचार के अनेक दोष लगाए हैं।

नूह एक सेमिटीय नाम है। इसका अर्थ है, विश्राम, सुविधा। यहूदी धर्मशास्त्रों (माइथोलौजी) के अनुसार, आदम मानव मात्र का पूर्वज था। लेकिन उसका वंश समाप्ति के समीप था, जब नूह स्वयं छः सौ एक वर्ष की आयु का था।

आखिर मानव जाति का बुरा क्या हो गया है ? बाइबिल के अनुसार (उत्पत्ति. 9 : 5 - 6), मनुष्य इतना दुष्ट हो गया कि उसने ईश्वर को शोकाकुल कर दिया जिसके कारण उसे मानव रचना के लिए पछताना पड़ा। इसलिए उसने लगातार वर्षा करके बहुत बड़ी बाढ़ लाने का फैसला किया। इसका एक मात्र उद्देश्य इस पृथ्वी पर

से पाप धोने व मानव मात्र का विनाश करने का था। नैतिकता के इस उत्साह में आकर, ईश्वर ने चिड़ियों और जानवरों तक को नष्ट कर दिया, यह बिना बताए कि आख़िर उन्होंने ईश्वर का क्या अपराध किया था ? फिर भी ईश्वर भक्ति के पुरस्कार स्वरूप कृपालु ईश्वर ने नूह को गोफर लकड़ी की एक विशेष प्रकार की जल नौका बनाने का आदेश दिया जिसमें वह, उसकी पत्नी, उसके बेटे व उनकी पत्नियाँ, पशु और मुर्गी-मुर्गा के जोड़े आदि रह सकें। (उत्पत्ति. 6 : 14-22)। इस बाढ़ में नूह अपनी सद्गुणों के पुरस्कार के रूप में, जो कुछ बचा सका, वही बाकी रहा, शेष सब बरबाद हो गया। इसी के कारण नूह को उस बाढ़ का विजेता माना गया तथा उसे मानव मात्र का द्वितीय पूर्वज तथा चिड़ियों और जानवरों का रक्षक माना गया।

इसके अलावा, क्योंकि वर्तमान मानव जाति उसके तीन पुत्रों शैम, हैम और जाफैथ से उत्पन्न हुई है, अतः हम सब यहूदी हैं। साफ़ तौर पर यह सब ईश्वरीय नैतिकता का पुरस्कार है। नूह की नैतिकता के प्रति अपनी प्रसन्नता दिखाने के लिए ईश्वर ने उसके साथ एक समझौता किया (उत्पत्ति. 9 : 10-17)। यह उसी समझौते का एक अंग है कि ईश्वर फिर कभी इस पृथ्वी पर बाढ़ नहीं लाएगा। ईश्वर का यह निश्चय इतना कठोर था कि उसकी स्मृति में उसने आकाश में इन्द्र धनुष स्थापित कर दिया ताकि वह ईश्वर को अपने समझौते को पूरा करने की सदैव याद दिलाता रहे !

इस प्रशंसा के बाद नूह के व्यावहारिक जीवन पर एक दृष्टि डालने की आवश्यकता है ताकि उसके नैतिक स्तर का सही मूल्यांकन किया जा सके। बाइबिल (उत्पत्ति. अध्याय 19) के अनुसार वह किशमिश की खेती करने में एक कुशल ज्ञानी व खोजकर्ता था और स्वयं नशीली वस्तुओं का सेवन करता था। एक दिन जब वह नशे में पूरी तरह चूर था तो वह नंगा ही फ़र्श पर लेट गया। संयोग वश उस कमरे में उसका दूसरा पुत्र हैम वहाँ चला गया, और यकायक उसने अपने पिता के नंगेपन को देखा लिया। उसने इस घटना का अपने दूसरे भाइयों-शैम और जाफैथ से जिक्र किया। उन्होंने अपने पिता को इस हालत में बिना देखे श्रद्धापूर्वक ढ़क दिया।

नूह ने अपनी नशे की हालत से मुक्त होकर उठने पर वह सब अनुभव किया जो कुछ घटित हुआ। उसके बाद उसका अपने ही पुत्र हैम के साथ व्यवहार उसकी नैतिक मर्यादा के बिल्कुल भी अनुकूल नहीं था क्योंकि उसने अपने पुत्र के साथ अनुचित व्यवहार किया जबकि नैतिकता के किसी भी मापदण्ड के अनुसार हैम बिल्कुल निरपराध था। फिर भी नूह ने अपने ही पौत्र और हैम के पुत्र कनान को अपने पिता की अज्ञानता वश भूल के लिए अभिशापित किया। उसने कहा कि कनान शैम और जाफेथ, जिन्हें ईश्वर का आशीर्वाद प्राप्त होगा, का सेवक बन कर रहेगा तथा वे और उनकी सन्तानें तो फलेंगी- फूलेंगीं मगर कनान की सन्तानें उनकी आजीवन सेवा करेंगी।

नूह नौ सौ पचास वर्ष तक जीवित रहा। यदि इस पर विश्वास भी कर लिया जाए तो उसका कनान को अभिशापित करना उसकी नैतिकता के उच्च आदर्शों के ज़रा भी अनुकूल नहीं है, जैसा कि बाइबिल में कहा गया है। अपने पिता हेम के अपराध के लिए कनान को शापित करना पूर्णतया अनुचित था। वर्तमान पैलेस्टाइन के निवासी-केनानाइट वस्तुतः कनान के ही वंशज हैं। इस प्रकार यहूदियों और पैलेस्टाइनियों के बीच चले आ रहे पुराने संघर्ष की जड़ में नूह का यह नैतिक आदर्श प्रतीत होता है। फिर भी यहूदियों के ईश्वर ने नूह को मानव जाति का दूसरा पूर्वज चुना है।

(2) अब्राहम

अब्राहम यूहदियों का पूर्वज था जिसको सैमिटीय मतों-यहूदी मत, ईसाइयत और इस्लाम, का पिता माना जाता है। उसे एक विश्वासपात्र मनुष्य का आदर्श समझा जाता है जिसकी ईश्वर ने भी पुष्टि की है। इस विषय में क़ुरान कहता है कि :

(i) अल्लाह ने कहा "मैं तुझे सब लोगों का नायक बनाने वाला हूँ।" (2 : 124, पृ. 145)

(ii) "अल्लाह ने इबराहीम को अपना घनिष्ठ मित्र बनाया था।" (4 : 125, पृ. 244)

(iii) "तुम्हारे बाप इबराहीम का पंथ (तुम्हारा पंथ है) उसने तुम्हारा नाम 'मुस्लिम' रखा था, पहले भी और इसमें भी—ताकि तुम रसूल पर गवाह हो।" (22 : 78, पृ. 601)

ईश्वर का यशस्वी पैगम्बर और दैवी नैतिकता का आदर्श, अब्राहम मैसोमोटामिया के ऊर नामक स्थान का एक निवासी था। यहूदियों के ईश्वर, यहोवा ने, उससे एक अनिश्चित देश की तलाश के लिए, अपना देश और अपने लोग छोड़ने को कहा, जहाँ वह एक नए राज्य का पिता होगा। यह देश कनान निकला (जो कि सीरिया और ईजिप्ट के बीच है)। ईश्वर ने उससे वायदा किया कि उसकी सन्तानें उस महान राज्य की मालिक होंगी।

बाइबिल के अनुसार जब अब्राहम एक सौ वर्ष का और उसकी पत्नी सराह निन्यान्वे वर्ष की थी तब उसके इसाक़ नामक पहला बच्चा पैदा हुआ। कितना आश्चर्य है कि जिस दम्पति के युवावस्था में कोई सन्तान नहीं हो सकी, उसके सौ वर्ष की असम्भावित आयु में सन्तान होती है। यह आयुर्विज्ञान के पूर्णतया विपरीत है। निन्यानवे वर्ष की आयु में महिला के पहले बच्चे का जन्म लेना और उसका जीवित रहना प्राकृतिक नियमों के पूर्णातया प्रतिकूल है। उस ज़माने में भी इस

प्रकार की बात में विश्वास करना मनघड़न्त धारणा है। विश्वास का आधार वैज्ञानिक सत्यों पर आधारित होना चाहिए जो कि नैतिक चिन्तन और मानव विकास की देन हैं। मानव मस्तिष्क को अन्धविश्वासों में बाँधना तो मनुष्य की नैतिक प्रतिष्ठा को अपमानित करना है।

ऐसा मालूम पड़ता है कि अब्राहम नैतिकता में कम, और ईश्वर की प्रसन्नता पाने में ज्यादा विश्वास करते थे। इस बात की पुष्टि बाइबिल में वर्णित तथ्यों से और अधिक होती है। इसमें कहा गया है कि ईश्वर ने अब्राहम को आदेश दिया कि वह इसाक़ को लेकर मौरिय्याह के प्रदेश में आए और वहाँ उसको एक पहाड़ के ऊपर *''जो मैं तुझे बताऊंगा होम बलि करके चढ़ा।'' (उत्पत्ति 22 : 2, पृ. 17)*

उसने लकड़ी की एक बलिवेदी बनाई, इसाक़ को बांधा और उसे उसके ऊपर रख दिया। उसने वास्तव में अपने पुत्र इसाक़ का वध करने के लिए एक चाकू निकाला (उत्पत्ति 22 : 10) लेकिन एक चमत्कार ने उसे बचा लिया। तनिक इस सारी घटना के नैतिक पक्ष पर विचार करो :

(1) किसी की हत्या करना सबसे जघन्य कार्य है और नैतिकता की दृष्टि से यह एक निन्दनीय अपराध है। यह कैसा परमेश्वर है जिसने किसी मनुष्य की परीक्षा लेने के लिए ऐसे घृणापूर्ण कार्य करने को कहा?

(2) यदि यह सब कार्य परीक्षा लेने के लिए था, तो निश्चय ही ईश्वर इस बात से परिचित नहीं था कि अब्राहम इस परीक्षा में क्या करेगा। यदि वह जानता था तो वह एक छल भरा खेल-खेल रहा था जो कि परमेश्वर की प्रतिष्ठा से बहुत निचले किस्म का था, जो अपने को इस सबसे अद्‌भुद जगत का रचयिता होने का दावा करता है।

(3) यदि परमेश्वर नैतिकता में विश्वास करता है, तो उसे हत्या, और उन सभी लोगों से जो परमेश्वर के नाम पर ऐसा जघन्य पाप करते हैं, से घृणा करनी चाहिए। इस घटना से ''अब्राहम की पूर्णता के स्तर'' का भी साफ़ पता होता है। ज़रा सोचिए कि मुक्ति पाने की चाह किस तरह मनुष्य को अपने ही पुत्र तक की हत्या करने को प्रेरित कर देती है! क्या यह सब कार्य उच्च नैतिकता का नमूना है अथवा पूरी स्वार्थपरता है? नैतिक आदर्शों की आवश्यकता तो यह है कि पिता अपने पुत्रों की रक्षा करने को अपने प्राणों तक को बलिदान कर दे, और न कि इसके विपरीत, जैसा हम यहाँ अब्राहम के बारे में देखते हैं।

इतना ही नहीं, एक और भी ऐसी ही घटना है जिससे हमें अब्राहम की नैतिकता का पता चलता है। यहाँ हमारा संकेत अब्राहम की पत्नी सराह की नौकरानी-हगर से उत्पन्न उसके अन्य पुत्र इशमाइल के प्रति व्यवहार की ओर से है। यह जानकर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि अब्राहम की पत्नी सराह ही अपने पति

को हगर के साथ संभोग करने को प्रेरित करती है। अपनी पत्नी के साथ यौन सम्बंध रखना तो मर्यादित एवं नैतिक है, लेकिन किसी अन्य स्त्री के साथ, चाहे वह रखैल या नौकरानी ही हो, तो पूर्णतया पाप और जघन्य अपराध है। विवाह व्यवस्था केवल अपनी ही पत्नी के साथ शारीरिक सम्बंध रखने को वैधानिक अनुमति देती है। इस प्रकार, इस्लाम का विवाह सम्बंधी दर्शन, जो अपनी रखैल के साथ शारीरिक सम्बंध रखने की अनुमति देता है, संदेहास्पद हो जाता है, और अपनी प्रतिष्ठा खो बैठता है। भला अब्राहम जैसा पूर्ण पुरुष इतना नीचे कैसे गिर सकता है?

इस कृत्य के परिणामस्वरूप हगर के इशमाइल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि अरब लोगों का पूर्वज हो गया। वहीं सराह जो हगर के माध्यम से एक मां बनना चाहती थी, हगर और इशमाइल दोनों के प्रति ईर्ष्यालु हो गई। अब उसकी खुशी इसी में थी कि वह हगर और इश्माइल दोनों को अपने घर से बाहर निकाल दे और अब्राहम को उन्हें रेगिस्थान में अकेला छोड़ने को बाध्य करे। सराह कभी अति सुन्दरी महिला थी। अतः अब्राहम सराह को नाराज़ नहीं कर सकता था क्योंकि उसकी नाराज़गी उसे व्याकुल कर देती। परम पिता परमेश्वर ने भी इस घटना में सराह का साथ देना चुना। वह बालक इशमाइल और हगर को बीर-शेबा के सुनसान बीहड़ों में ले गया और वहीं उन्हें मरने को छोड़ दिया। यहाँ फिर एक चमत्कार हुआ जिसने उन दोनों को बचा लिया जो कि बाइबिल के उत्पत्ति पुस्तक के 21वें अध्याय में वर्णित है। इस घटना से अब्राहम और उसके परमेश्वर के नैतिक मूल्यों की अवहेलना सुस्पष्ट है।

एक और घटना से सुस्पष्ट होता है कि अब्राहम का व्यवहार एक साधारण मनुष्य जैसा था। वह भी एक साधारण मनुष्य के समान मौत से डरता था। जब वह गैरार राज्य में रुका हुआ था तो वहाँ के राजा अबिमेलेक ने सराह को उससे छीन लिया क्योंकि वह अति सुन्दरी थी। वह भली भाँति जानता था कि राजा सराह को पाने के लिए उसकी हत्या तक कर सकता था (उत्पत्ति : 20 : 11-12)। ऐसे समय में अब्राह्म ने उनको कहा कि सराह उसकी पत्नी नहीं, बल्कि उसकी बहिन है। यह भी समझा जाए कि इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर जब वह मिश्र में घुसा, उसने इसी कारण उसी प्रकार का झूठ कहा (उत्पत्ति 12 : 11-20)। उस अवसर पर तो वह मरने से और भी अधिक भयभीत था। सराह को भी अब्राहम की रक्षा करने के लिए इस नग्न झूठ का साथ देना पड़ा।

ज़रा विचारिए! कि "परमेश्वर का मित्र" भी अपनी जान बचाने के लिए झूठ बोल सकता है : परमेश्वर अब्राहम से कहता है "मेरे सामने चल और सिद्ध होता जा" (उत्पत्ति : 17 : 1)। यदि परमेश्वर द्वारा चुने गए पूर्ण पुरुष का यह चरित्र है, तो फिर साधारण मनुष्यों से क्या आशा की जा सकती है? और क्या परमेश्वर उन

लोगों को मुक्ति देने से मना करसकता है जबकि स्वयं परमेश्वर की नैतिक अवधारणाएं उनसे भी निम्न स्तर की हैं, जिनको साधारण मनुष्य दैनिक जीवन में प्रयोग करते हैं?

(3) लूत

अति प्राचीन काल में, लगभग 1900 बी. सी. में, लूत नामक पैगम्बर सोडोम और गोमर्राह के नगरों में प्रचार करता फिरता था, जो आज उथले पानी में डूबे हुए समझे जाते हैं तथा जो इज़राइल के डैड सी के दक्षिणी छोर पर अल-लिसान प्रायद्वीप के दक्षिण में बसे हुए थे।

इन शहरों के निवासियों के दुर्व्यसनों के कारण ही सौडोमी नामक शब्द का जन्म हुआ जिसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है। दुर्व्यसनों के क्षेत्र में इन शहरों को इसी प्रकार की प्रसिद्धि मिली हुई थी जैसे कि कुछ आधुनिक मेट्रोपॉलिटन शहर जुआ और वैश्यावृत्ति आदि के लिए प्रसिद्ध होते हैं। इन दुष्प्रवृत्तियों की अत्यधिक बदनामी के कारण ये प्रभु के कोप भाजन व विनाश के शिकार बने। अस्तिकों का विश्वास है जैसा कि बाइबिल कहती है "तब यहोवा ने अपनी ओर से सोडोम और अमोरा पर आकाश से गंधक और आग बरसाई।" (उत्पत्ति. 19 : 24-25) जिससे उनका सर्वनाश हो गया। इस परम्परागत दुष्टता और इन रंगीले शहरों के भाग्य को लेकर पिछले सैकड़ों वर्षों में अनेक नाटक, उपन्यास और चित्रकारियां बनाई गई हैं। फिर भी सोडोमी की लहर कम होने की जगह लगातार बढ़ती ही रही है जिसकी आज के आधुनिक युग में मानववाद के नाम पर अधिकाधिक समलैङ्गिता जैसी कुरीतियों को जन्म दिया है।

हम सहिष्णु व्यक्ति हैं, और अपनी नापसन्दियों को अपने तक ही सीमित रखते हैं। लेकिन लूत ने इसके विरोध में विद्रोह किया। उसकी निराशा, असन्तोष और विरोध की सीमा उसके विरुद्ध उठाए गए दमनकारी कृत्यों से साफ़ स्पष्ट होती है जो उसने इन कुरीतियों के विरुद्ध उठाए। उसे सोडोमी के विरुद्ध उपदेश देने व उसे मिटाने के लिए किसने उसे इतना साहस दिया? क्योंकि वह परमेश्वर द्वारा भेजा गया पैगम्बर था जिसको ये कुरीतियां बिना किसी भय, चिन्ता और असुविधा के मिटाने का काम सौंपा गया था। कुरान के अनुसार—

"और लूत को हमने 'हुक्म' दिया और ज्ञान प्रदान किया, और उसे उस बस्ती से छुटकारा दिया जो गन्दे कर्म करती थी—वास्तव में वे बड़े ही बुरे, अवज्ञाकारी थे—और उसे (लूत को) हमने अपनी दयालुता (की छाया) में प्रविष्ट किया। निसंदेह वह अच्छे लोगों में से था" (21 : 74-75, पृ. 581) उसमें अपने लोगों को कठोरता से कहने का साहस था।

कुरान कहता है, *''क्या तुम संसार के लोगों में से पुरुषों के पास आते हो, और तुम अपनी पत्नियों को, जिन्हें तुम्हारे 'रब' ने तुम्हारे लिए पैदा किया, छोड़ देते हो? बल्कि तुम सीमा से आगे बढ़ जाने वाले लोग हो।'' (26 : 165-166, पृ. 661)*

लोगों को लूत की दैवी अनुशासन वाली बातें अच्छी नहीं लगीं और उससे कहा कि यदि उसने समलैंगिता (सोडोमी) के विरुद्ध उपदेश देना बन्द नहीं किया, तो उसे इस नगर से बाहर निकाल दिया जाएगा।

लूत, जो कि अब्राहम का भतीजा था, हालांकि निश्चय ही साहसी था, अपने उद्देश्य में सफल न हो सका। दयालु परमेश्वर स्वयं उन लोगों के दुष्कृत्यों के कारण अधीर हो गया। उसने इन लोगों का सर्वनाश करने का निश्चय कर लेने के बाद, दो फरिश्तों को दैवी दण्ड देने के लिए भेजा। लोगों ने उन्हें भूलवश साधारण पुरुष समझकर उनके साथ कुकृत्य करने के लिए पकड़ लिया। क्योंकि वे लूत के यहाँ ठहरे हुए थे, इसलिए लूत ने उनकी प्रतिष्ठा बचाने और उत्तेजित भीड़ को शान्त करने के लिए, अपनी दो कुंवारी पुत्रियां उन्हें सौंपने की कोशिश की, जिन्हें लोगों ने स्वीकार नहीं किया और अपने दुष्कृत्य को सफल करने में लगे रहे। समझने की बात यह है कि दैवी पैगम्बर लूत, दैवी फरिश्तों को अपने बल बूते पर रक्षा न कर सका, और उसे अत्यन्त घृणित व निन्दनीय कार्यों के लिए स्वयं अपनी पुत्रियों की प्रतिष्ठा दांव पर लगानी पड़ी जो कि नैतिकता की दृष्टि से अत्यन्त निन्दनीय है।

बाइबिल के अनुसार दूसरे दिन भयंकर आग और पत्थरों की वर्षा हुई जिससे सोडोम और अमोरा का सारा नगर तहस-नहस हो गया केवल जो व्यक्ति बचे, वे थे लूत, और उनकी दो पुत्रियां (उत्पत्ति 19 : 24-27) और उसकी पत्नी नमक के खम्भे की शल्क में बदल गई, परमेश्वर की कठोर आज्ञा के विरुद्ध देखने के दण्ड स्वरूप।

इस प्रकार वास्तव में केवल तीन ही प्राणी बाकी बचे यानी लूत और उसकी दो पुत्रियाँ, और लूत नगर को छोड़कर पहाड़ की गुफा में रहने लगा।

इन परिस्थितियों में बाइबिल जो कुछ कहती है वह परमेश्वर के पैगम्बर लूत के सदाचारी और उच्च व्यक्ति होने से कुछ भिन्न ही है। उत्पत्ति (19 : 31-38) के अनुसार, अपने पिता के वंश को सुरक्षित करने के लिए पहले लूत की बड़ी बेटी ने लूत के साथ संभोग किया और फिर दूसरे दिन छोटी लड़की के बारी आई तथा उसने भी पिता को पथ भ्रष्ट कर विषय भोग किया। उन दोनों ने पथभ्रष्ट करने का एक ही तरीका अपनाया यानी पहले उसे खूब नशे में धुत्त किया कि प्रत्येक अवस्था में उसे पता ही नहीं चला कि पुत्री कब नीचे लेटी और कब उठ गई। इसका नतीजा यह हुआ कि दोनों ही पुत्रियां अपने ही पिता से गर्भवती हो गई। एक का नाम मोआब हुआ जो आगे चलकर मोआबिटों को पिता कहलाया और छोटी पुत्री से जो

पुत्र जन्मा उसका नाम बेनम्मी रखा गया जो अम्मोन नामक कबीले का पिता कहलाया।

लूत की नैतिकता पर कोई फैसला देना एक संवेदनशील मामला होगा। मगर उपरोक्त घटना से दो बातें स्पष्ट दिखाई देती हैं : पहली कि पैगम्बर नूह के समान पैगम्बर लूत भी नशा करने का आदी था वर्ना वह शराब स्वीकार नहीं करता जबकि सच्चाई यह है कि उसने अपनी दूसरी बेटी के हाथ से भी शराब स्वीकारी जो उसके नशे का आदी होना सिद्ध करता है। दूसरे उसने इस कुकृत्य के लिए अपनी पुत्रियों के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया बल्कि दोनों बच्चों को स्वयं पाला- पोसा और बड़ा किया। उसके इस व्यवहार से समस्त घटनाक्रम की 'स्वीकृति' ही नज़र आती है। हालांकि इसे घटना पर अन्य अनेक प्रश्न उठाए जा सकते हैं। मगर विचारशील पाठकों के लिए यहाँ इतना ही काफ़ी है।

(4) डैविड

बाइबिल का साफ़-साफ़ कहना उसकी अपनी एक अलग ही विशेषता है। अनेक बार इसने मनोवैज्ञानिक सत्यों को उजागर किया है जबकि मनुष्य झूठे अहंकार और आत्म पवित्रता में डूबा होने के कारण सत्य को अपने साथियों से छिपाना चाहता है। 1. किंग (1 : 1-4) में डैविड के बारे में साफ़-साफ़ कहा गया है। इसमें पुरुष मानसिकता को उजागर किया गया है जिसे मैं अपने ही शब्दों में इस प्रकार कहना चाहूँगा :

जैसे ही वह अपनी लम्बी आयु और शारीरिक थकावट के कारण अपनी मृत्यु शय्या पर लेटा हुआ था, वह अनिश्चितता और ठंड के कारण काँप रहा था। अपने शरीर को अपेक्षा उसकी आध्यात्मिकता अधिक क्षीण थी, जो कभी जीवन की कर्मठता एवं अपनी मर्दन, गर्जन और गुंजन से ओतप्रोत थी, और जिसे जाग्रत करने के लिए उसे ऊर्जा की आवश्यकता थी, जो उसे प्रचंड जीवनी शक्ति प्रदान कर सके। किसी ने बुद्धिमत्तापूर्ण चिन्तन के परिणामस्वरूप स्त्री स्पर्श को पुनः नवयौवन प्राप्ति करने के लिए उपयुक्त समझा।

शाही न्यायालय ने फौरन ही इज़राइल के सभी तटों पर घुड़सवार भेजने का आदेश दिया, ताकि एक कुंवारी युवा, अत्यन्त सुन्दरी को ढूंढा जा सके, जो मरणासन्न डैविड का मन बहला सके। उसके सीने पर लेटकर उसकी सुप्त भावनाओं को उद्वेलित कर तृप्त कर सके और उसे मृत्यु के दुख से मुक्त कर सके तथा उसमें नए आनन्द, उत्साह और भोग विलास की भावनाओं को जगा सके जो कि उसकी कभी आदत, अधिकार एवं प्राथमिकता थी।

यह प्रयास बेकार नहीं गया क्योंकि खोजी घुड़सवार एक अत्यन्त आकर्षक

और सुन्दरी युवती को लेकर लौटे और बाइबिल के अनुसार उसका नाम अविशाग था जो कि एक शनामाइट थी। इन सब कोशिशों के बाद, उस युवती का यौवन एवं सौंदर्य का चमत्कार भी डैविड को मौत से न बचा सके, क्योंकि वह युवती किसी चमत्कार के लिए बहुत देर से पहुँची। तब तक डैविड उस युवती की उपस्थिति का अनुभव करने की अपनी मानसिक और शारीरिक क्षमताएं खो चुका था।

यह डैविड कौन था? वह जैस्से का सबसे छोटा पुत्र और बोज़ व रुथ का पौत्र था। उसका जन्म बैथलेहैम में हुआ था। योद्धा के रूप में वह एक यहूदी होरो था, जिसने गोलियथ को हराया था, जब वह केवल एक युवक तथा भारी योद्धा था। उसकी इस वीरता के कारण वह इज़राइल के प्रथम राजा सॉल की कोर्ट में एक सहायक के रूप में नियुक्त किया गया।

इससे भी अधिक उसमें ऊंचे स्तर के धार्मिक नेतृत्व की क्षमता थी जिसने यहूदी राष्ट्रवाद की नींव को महान बना दिया जो कि उसके अस्तित्व का रहस्य था। एक आदर्श राजा के रूप में, जैसा कि यहूदी परम्परा मानती है, वह मसीही आशाओं का केन्द्र बिन्दु हो गया। यहूदी आशाओं का मापदण्ड होने के कारण उसका आदर्श यहूदियों की सभी प्रकार की कठिनाइयों, निराशाओं और असफलताओं में प्रेरणादायक रहा है। डैविड की इतनी उच्च राष्ट्रीय प्रतिष्ठा ने ही न्यू टेस्टामेंट के लेखकों को उसे जीज़स का पूर्वज मानने को प्रेरित किया। उसके यश की सीमाएं यहूदी मत की पराकाष्ठाओं को भी लांघ जाती हैं और जो ईसाइयत और इस्लाम के साम्राज्यों तक पहुंच जाती हैं। कुरान कहता है—

"(हमने कहा) हे दाउद! हमने तुझे धरती में 'खलीफ़ा' बनाया है : अत: तू लोगों के बीच हक़ के साथ हुकूमत कर, और (अपनी) इच्छा का अनुपालन न कर कि वह तुझे अल्लाह के मार्ग से भटका दे।" (38 : 26, पृ. 819)

सरल शब्दों में, कुरान के अनुसार (38 : 18-20, पृ. 818) डैविड परमेश्वर का एक उच्चस्थ पैगम्बर था जिसे अपने 'रब' की ओर से प्रातः और सायं, पर्वतों व चिड़ियों पर, आदेश का अधिकार था। वह परमेश्वर की ओर से आम जनता पर न्यायपूर्वक राज्य करने के लिए सर्वोच्च अधिकारी नियुक्त किया गया था। उसे तत्त्व दर्शिता दी गई।

एक पैगम्बर से यह आशा की जाती है कि वह निरपराधिता और नैतिक मूल्यों की पवित्रता का आदर्श हो। मगर देखिए डैविड के चरित्र के विषय में स्वयं बाइबिल क्या कहती है जिसका वर्णन 2. सैम्युअल और प्रथम किंग में किया गया है। आश्चर्यजनक कथन तो यह है कि पैगम्बर एक मनुष्य है और उसका अपनाया गया नैतिक स्तर वास्तविकता से कहीं अधिक विश्वास का विषय है। देखिए :

बाइबिल (2 सैम्युअल 2 : 11) कहती है कि "एक बार डैविड दोपहर ढले

जैसे ही ''अपनी बिस्तर से उठा'' और अपने महल की सबसे ऊपर की छत पर टहल रहा था तो उसकी निगाह एक अति सुन्दरी युवती के सौंदर्य में अटक गई जो अपने ही घर के एकान्त में स्नान कर रही थी। उसके नग्न शरीर के आकर्षण ने डैविड के मन में एक अति अदम्य काम वासना जगा दी क्योंकि युवती के सुन्दर बदन के रोम-रोम से डूबते सूर्य की गुलाबी आभा दमक रही थी। गोलियथ का विजेता, वह डैविड एक नहाती युवती के सौंदर्य की काम वासना और उसे भोगने की इच्छा का शिकार हो गया।

यह महिला कौन थी? उसका नाम वाथशेबा था और डैविड की ही सेना के एक जनरल, हिटाइट, यूरियाह की पत्नी और एलिया की बेटी थी। डैविड का वाथशेबा के प्रति दृष्टिकोण व व्यवहार एक पश्चिमी नाइट के तरीक से बिल्कुल भिन्न था, जिसने स्वयं उस महिला से प्यार की भीख मांगी। आहत शहंशाह ने जो ज़ीजस क्राइस्ट का पूर्वज था, उसे पाने का पूर्वी तरीका अपनाया। उस महिला ने आत्म सपर्मण कर दिया। लेकिन डैविड ने अपनी पवित्रता बनाए रखी! ओल्ड टेस्टामेंट में अनैतिक यौन सम्बंधों के लिए निर्धारित सज़ा भुगतने के लिए तैयार होने की अपेक्षा डैविड ने उसके साथ अनिश्चित काल तक शारीरिक सुख भोगने का स्वयं को अधिकारी समझा। हालांकि, पैगम्बर नाथन ने अलंकारिक रूप में डैविड के इस कृत्य की भर्त्सना करने का साहस जुटाया है। दैवी डैविड पहले तो गुस्से से आग़ बबूला हो गया, और फिर अपने पाप की गम्भीरता को समझते हुए वह पछताया। लेकिन इस पाप को धोने का उसने एक अनोखा ही तरीका अपनाने का फैसला किया। उसने उस महिला के साथ दुबारा सहवास किया, वह दूसरी बार भी गर्भवती हो गई और बुद्धिमान व चिरस्मरणीय सोलोमन की मां बन गई।

लेकिन डैविड द्वारा बाथशेबा के पहले गर्भ का क्या हुआ? यहूदियों के परमेश्वर यहोवा ने अपनी बुद्धि के अनुसार डैविड को सज़ा के रूप में उस बच्चे को जीवित नहीं रहने दिया। लेकिन इसमें, बच्चे का क्या दोष था जो उसे समाप्त कर दिया गया। इस दैवी नैतिकता के उदाहरण भी कैसे-कैसे है?

ईमानवाले मानते हैं कि यह डैविड के पवित्रीकरण का तरीका था। हालांकि यह दैवी क्रियाविधि कुछ और आगे चली। तदनुसार डैविड ने बाथशेबा के पति यूरियाह को बुलाया और उसके हाथ में एक बन्द लिफाफा देते हुए उससे कहा कि इसको ले जाकर मुख्य सेनाधिकारी जोआब को दे दो। इस पत्र में, डैविड ने लिखा था कि यूरियाह को अधिकतम जोखिम भरे लड़ाई के मैदान में युद्ध के लिए भेजा जाए। वास्तव में, यह सब उसकी हत्या करने का षड्यंत्र मात्र था। उसकी विधवा पत्नी से विवाह करने के लिए परमेश्वर के पैगम्बर डैविड ने इस योजना द्वारा न केवल यूरियाह की हत्या करवाई बल्कि उसकी हत्या के साथ अन्य अनेक इज़राइली

सैनिकों का भी वध हुआ। फिर भी परमेश्वर ने पैगम्बर डैविड को क्षमा कर दिया। कुरान और बाइबिल दोनों ही इस घटना की पुष्टि करते हैं।

(5) सोलोमन

कुरान ने बुद्धिमान सोलोमन को एक पैगम्बर की प्रतिष्ठा प्रदान की है। इस्लाम अपने को अरब निवासी मुहम्मद द्वारा स्थापित करने का दावा नहीं करता है बल्कि परमेश्वर द्वारा नूह को दिए गए धर्म का लगातार चले आने का रूप मानता है। कुरान कहता है, हमने नूह और नूह के बाद पैगम्बर अब्राहम, इसमाईल, इसाक़, याक़ूब, ईसा, यूनुस, अय्यूब हारुन, सोलोमन....आदि को बह्य की। (4 : 163, पृ. 251)

इससे स्पष्ट है कि पैगम्बरवाद की कड़ी में मौजूद होने के कारण सोलोमन एक महत्त्वपूर्ण पैगम्बर था। वह कितना महत्त्वपूर्ण था? कुरान उसमें अलौकिक गुण मानती हैं जैसे कि परमेश्वर ने पैगम्बर डैविड को पर्वतों और चिड़ियों पर हुक्म करने का अधिकार दिया था वैसे ही परमेश्वर ने सोलोमन को हवा पर आदेश करने का अधिकार दिया *"सुलेमान के लिए हमने वायु अधीन कर दी"*, (21 : 81, पृ. 582), और उसे जिनों तक का शासक बनाया। इसके अलावा नेक खुदा ने उसे चिड़ियों और जानवरों व यहाँ तक कि चीटियों तक की बोली समझने व परखने की अद्‌भुद शक्ति दी और इस तरह वह उनसे उनकी ही बोली में बातचीत कर सकता था। (27 : 17-19, पृ. 671)

लेकिन बाइबिल सोलोमन का भिन्न ही विवरण देती है। वह उसे एक सम्पन्न राजा, अति बुद्धिमान् और गहरी जानकारी का स्वामी मानती है; जो कि राजसी ठाटवाट के प्रलोभनों से दूर था जो कि आमतौर से शासकों की जीवनचर्या और सोच को प्रभावित करते हैं। वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसमें कामवासना की अत्यधिक भूख थी और जैसा कि बाइबलीय विद्वानों ने कहा है कि उसे रखैलों को इकट्ठा करने का अत्यधिक शौक था। इसके परिणामस्वरूप वह सात सौ पत्नियों व तीन सौ रखैलों के रनिवास का स्वामी हो गया, और इस प्रकार अपनी कामवासना तृप्त करने के लिए उसे एक हजार सुन्दरियों की आवश्यकता रही। बाइबिल साफ़ तौर पर कहती है कि जब उसे परमेश्वर और स्त्रियों की बीच कोई चुनाव करना होता था, तो वह हमेशा स्त्रियों के ही पक्ष में होता था। प्रथम-किंग का ग्यारहवाँ अध्याय सोलोमन के नारी सौन्दर्य के प्रति विश्वसनीयता का सविस्तार वर्णन करता है। यहूदी परमेश्वर यहोवा जो कि ईर्षालु है, और अपने प्रति पूर्णसमर्पण और भक्ति चाहता है, ने एक यहूदी को गैर-यहूदी से विवाह करने को मना किया है। जैनटाइलों से विवाह करने से यहोवा की उसको परित्याग करने की सम्भावना हो सकती है। फिर भी सोलोमन "अनेक अपरिचित महिलाओं से प्रेम करता था।" क्योंकि उसके

रनिवास में न केवल फ़राओं की बेटियां थी बल्कि मोआबिटों, अमोनिटों, एडोमिटों, जिडोनियों और हिटाइटों की भी स्त्रियां थी।

उसकी गैर-यहूदी स्त्रियों से प्रेमासक्ति ने उसे परमेश्वर को त्यागने और उसके प्रति खुल्लम-खुल्ला विद्रोह करने को विवश कर दिया ''उसकी स्त्रियों ने उसका दिल अन्य देवताओं की ओर मोड़ दिया'' और उसने अपनी पत्नियों और रखैलों को प्रसन्न करने के लिए अन्य विदेशी देवताओं जैसे चेमोश और मोलेच नामक देवताओं के मन्दिर बनवाए। *पैगम्बर सोलोमन वास्तव में एक व्यावहारिक मूर्तिपूजक* था। इस सत्य की पुष्टि इस बात से होती है कि यहोवा स्वयं सोलोमन के सामने दो बार प्रगट हुआ (1. किंग 11 : 9-10) और उसे चेतावनी दी क्योंकि उसने मुझ परमेश्वर के साथ हुए समझोते और अन्य बातों की शर्तों को नहीं निभाया है। अत: उसे सज़ा दी जाएगी। मगर उसके पिता डैविड के प्रति श्रद्धा भाव के कारण वह सजा उसके जीवन में नहीं दी जाएगी। लेकिन उसकी सन्तानों को वह सजा अवश्य भुगतनी पड़ेगी जो लगभग अपना सभी साम्राज्य खो बेठेंगे।

बाइबिल में सोलोमन के निम्नलिखित गीत उसकी रंगाली प्रवृत्ति को उजागर करते हैं :

(i) ''तेरे होठ लाल रंग की डोरी के समान हैं, और तेरा मुंह मनोहर है, तेरी कनपटियां तेरी लटों के नीचे अनार की फांक सी देख पड़ती हैं।'' 4 : 3 पृ. 600)

(ii) ''तेरी दोनों छातियां मृग के दो जुडवें बच्चों के तुल्य हैं जो सोसन फूलों के बीच में चरते हों'' (4 : 5) आदि।

कोई इसे रहस्यवादी कविता शैली की अभिव्यक्ति समझे जिसमें उसे दैवी स्वरूप दिया जा सकता है। इस हालत में रहस्यवाद को कामवासनाओं का उजागर करना समझा जाएगा।

सोलोमन का ईश्वर के प्रति उपेक्षा भाव इस बात से भी प्रगट होता है कि उसने स्त्रियों के प्रति अपने विचलित मन को खोल कर लिखा जिसने उसकी इच्छाओं को भड़काया और वह स्त्रियों की दिल खोलकर प्रशंसा करता है मानों कि वह किसी स्वप्न लोक का निवासी हो जिसमें उसकी अत्यन्त प्रेयसियों का भी निवास हो। शेबा की रानी की कहानी इस कथन की पुष्टि करती है जो उसकी बुद्धिमत्ता की कहानियाँ सुनकर रोमांचित हो जाती थी और ''वह कठिन प्रश्न पूछ कर इसकी पुष्टि करती थी'' (प्रथम किंग 10 : 1) क्योंकि वह यह बात परखने को थी कि सोलोमन की प्रसिद्धि सचाई पर टिकी हुई है या फिर यूं ही। ''उसने उससे दिल खोलकर बातें की'' (प्रथम किंग. 10 : 2)

बाइबिल द्वारा इस घटना का वर्णन सच्चा है क्योंकि इतिहास के पन्नों में भी रानी शेबा की कुछ मनोरंजक घटनाएं उपलब्ध हैं। उसने सोलोमन से पूछा ''दया

छेद किसमें हैं ? जब एक खुला होता है तो नौ बन्द हो जाते हैं और जब एक बन्द होता है तो नौ खुल-खुल जाते है'' इस पहेली का उत्तर दिया, मनुष्य। जब उसका योनिद्वार जन्म लेते समय बन्द हो जाता है। इस तात्कालिक और रहस्यवादी उत्तर को सुनकर रानी सोलोमन की बुद्धिमता से इतनी प्रभावित हुई कि वह उसके प्रगाढ़ आलिंगन में बंध, गई और कहा *''धन्य हैं तेरे जन.....जो तेरी बुद्धिमत्ता की बातें सुनते हैं ''*(प्रथम किंग. 10 : 8)। सोलोमन की बुद्धिमत्ता को सांसारिक सम्पत्तियों से प्रभावित करने के उद्देश्य से रानी ने सोलोमन को ढेर-सा सोना, कीमती जवाहरात और मसालों की भारी मात्रा भेंट की। बदले में, ''सोलोमन ने शेबा की रानी की उन सभी इच्छाओं की पूर्ति की जो उसने चाही....'' (प्रथम किंग. 10 : 13)

सोलोमन की बुद्धिमत्ता और शारीरिक सौन्दर्य से प्रभावित हो कामासक्त रानी ने इस रंगीन अवसर का आनन्द उठाया और बाद में एक पुत्र को जन्म दिया जो इतिहास में मेनेलिक के नाम से जाना गया। वह यहूदियों की एक अफ्रीकी-जनजाति का पिता बना जो फलाश कहलाई जिसका अस्तित्व 1867 तक एक रहस्य ही बनी रही।

(6) मुहम्मद

कुछ लोगों द्वारा पैगम्बर मुहम्मद का चरित्र बहुत बढ़ा-चढ़ा कर प्रचारित किया गया है क्योंकि ऐसा करने में उनके निहित स्वार्थ सरलतापूर्वक सिद्ध होते रहते हैं। यह विषय यहाँ इतना महत्त्वपूर्ण है कि यदि परिणामों के भय के कारण मैं इस विषय को छोड़ दूं तो मैं मानव मात्र के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने में असफल रह जाऊंगा। साथ ही ईमानदारी व सच्चाई की मांग है कि मेरा कथन सत्यतापूर्ण हो। सत्य के अलावा कुछ न हो।

अध्याय दो

पैगम्बर मुहम्मद

इस्लाम और अरब साम्राज्य के संस्थापक अबू अल-कासिम मुहम्मद इब्न अब्द अल-मुत्तालिब इब्न हाशिम 570 एडी. में, अपने पिता की मृत्यु के बाद मक्का में पैदा हुए थे। सबसे पहले तो वे अपने सगे दादा के संरक्षण में पले और उनकी मृत्यु के बाद, उनके संरक्षण का उत्तरदायित्व उनके चाचा अबू तालिब ने ले लिया। और जब वे सिर्फ छः साल के ही थे कि उनकी माता अमीना भी इस संसार से चल बसीं।

मुहम्मद हाशिम वंश के थे, जो कि कुरेश कबीले का एक हिस्सा था, जिसने मक्का बसाया, जिसमें मुहम्मद पैदा हुए थे। हालांकि मक्का एक छोटा-सा कस्बा था, मगर यह व्यापार का केन्द्र था, और तीर्थ स्थल काबा की वजह से यह नगर एक आदरणीय स्थान माना जाता था। कुरैश, यहूदियों के पूर्वज अब्राहम के पुत्र इशमाइल के वंशज माने जाते हैं जिनका दावा है कि अब्राहम ने इशमाइल के साथ आकर परमेश्वर की पूजा करने के लिए स्वयं काबा का मन्दिर बनाया था। लेकिन वह बाद में मूर्त्ति पूजा का केन्द्र बन गया जो कि अनेक सदियों तक चलती रही। मुहम्मद का 8 जून 632 एडी में स्वर्गवास हो गया।

काबा क्योंकि एक मन्दिर था, जो कि भारतीय मूर्त्ति पूजा के सिद्धान्त पर आधारित था, और हाशिम लोग इसके ट्रस्टी थे, अत: वे सब न केवल मूर्त्तिपूजक थे, बल्कि मूर्त्ति पूजा के भी संरक्षक थे। अत: यह आश्चर्यजनक नहीं होगा कि जब मुहम्मद का जन्म हुआ, तो उसके दादा अब्द अल-मुत्तालिब ने "नन्हें बालक को अपनी गोदी में लिया और काबा के मन्दिर में गए और जैसे ही वे पवित्र भवन के पास खड़े हुए उसने परमेश्वर का धन्यवाद किया। बच्चे को मुहम्मद कहा गया" (दी लाइफ़ आफ़ मुहम्मद, सर विलियम्स म्यूर, पृ. 5)

इससे बिल्कुल स्पष्ट है कि *इस बालक का संस्कार परिवार के पैगनीय (मूर्त्ति पूजी) विधिविधान के अनुसार किया गया।*

निश्चय ही, बालक मुहम्मद अपने घर के बड़े बूढ़ों के साथ काबा के मन्दिर में नियमित रूप से जाया करता होगा। हदीस (मुस्लिम, संख्या 5654, खं. 4, पृ. 1478) जो कि जबीर ब. समूरा के कथन की प्रामाणिकता पर है, के अनुसार

पैगम्बर मुहम्मद ने कहा ''मैं काबा में पत्थर की शिला को पहचानता हूँ जो कि मुझे पैगम्बर होने से पहले प्रेरणा देती थी और मैं उसे आज भी पहचानता हूँ।''

यहाँ जिस पत्थर का उल्लेख किया गया है उसका संकेत निश्चय ही काबा के काले पत्थर (संगे असवद) से है। वह मुहम्मद को प्रेरणा नहीं देता होता यदि वे इस पवित्र मन्दिर में नहीं जाते रहे होते जिसमें अरब देश के विभिन्न कबीलों की लगभग तीन सौ पचास अन्य मूर्त्तियां भी थीं। ***इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि मुहम्मद भी काबा के मन्दिर में उसी उद्देश्य व भावना से जाते थे जिससे कि उसके परिवार के अन्य लोग जाते थे, जो कि पैगन (मूर्त्तिपूजक) थे, और अपने विश्वासों के कारण नरक की अग्नि में जल रहे हैं।*** उनके पिता तुल्य चाचा अबू मुत्तालिब (हदीस मुस्लिम, सं. 408, खं. 1, पृ. 167) के अनुसार, नरक के निचले हिस्से में जल रहे हैं, इसके बावजूद कि मुहम्मद उनके स्नेहपूर्ण सहयोग के बिना इस्लाम का प्रचार न कर पाते। कुरान की आयत (9 : 113) इस बात को दर्शाती है और पैगम्बर को, किसी भी मूर्त्तिपूजक से माफ़ी मांगने को मना करती है। वे भले ही उसके सगे सम्बंधी ही क्यों न हों जैसे माता-पिता, चाचा आदि।

पाठक इस बात का भी ध्यान रखें कि 605 एडी में भीषण बाढ़ आई, जो कि घाटी को बहा कर ले गई, जिसने काबा के मन्दिर को भी तहस-नहस कर दिया, और फिर उसे दुबारा बनाने की आवश्यकता पड़ी। यह मुहम्मद ही था जिसने 'संगे असबद' को अपनी पुरानी जगह पर पुन:स्थापित कराने का निष्ठापूर्वक प्रयास किया। इससे सुस्पष्ट है कि मुहम्मद मन्दिर के मूर्त्तिपूजकों में से एक था। *इसमें कोई अनुचित बात नहीं है, क्योंकि प्राय: सभी लोग अपने मां बाप के मत को अनुसरण करते हैं, जब तक कि वे अपने पूर्वजों को धर्म में कोई विशेष अनुचित बात न देखें। ऐसा मुहम्मद के साथ कुछ नहीं हुआ, जब तक कि वे चालीस वर्ष के नहीं हो गए और उन्होंने अल्लाह की तरफ से पहला खुदाई इलहाम पाने का दावा नहीं किया।*

मेरे कथन का टकराव इस्लामी पुस्तकों के बहुचर्चित विवरणों और लोगों की जुबानों पर बसे कथनों से है। वास्तव में, मुहम्मद में अलौकिक विशेषताएं दिखाने के लिए अनेक असाधारण कहानियां गढ़ी गई हैं ताकि उनके नाम का भरपूर लाभ उठाया जा सके। *यह तो धार्मिक और राजनैतिक नेताओं की चतुराईपूर्ण योजना है, जो स्वयं को, पैगम्बर के सच्चे-भक्त होने का दावा करने के कारण अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं, जबकि वास्तव में ऐसे लोग अनुभवी ढोंगी हैं। वे जितनी ही चतुराई से पैगम्बर मुहम्मद की प्रशंसा करते हैं, वे उतनी ही आसानी से अपनी झूठी आस्था से अपने अनुयायियों को लुभाने में सफल हो जाते हैं।* ऐसा दावा किया गया है कि—

(*i*) परमेश्वर ने सबसे पहले मुहम्मद की रोशनी पैदा की, जिसमें से परमेश्वर ने दूसरी सब चीजें बनाईं जिससे यह संसार बना हुआ है।

(*ii*) जब मुहम्मद पैदा हुआ, तो फरिश्तों ने गाना शुरू किया चारों तरफ से उनके चेहरों के ऊपर मूर्तियां गिरने लगीं और एशिया और भारत में सभी अग्निपूजकों की अग्नियां शान्त हो गईं।

(*iii*) ये और इन जैसे अनेक चमत्कार हुए, क्योंकि ऐसा दावा किया जाता है कि मुहम्मद साहब जन्म के पहले से ही पैगम्बर थे।

यह सब एक दम झूठा प्रचार मात्र है। यदि ऐसा सच होता तो मुहम्मद का जन्म एक मूर्त्तिपूजक पिता के घर में न होता और न एक-पैगन माता ने ही उसे जन्म दिया होता। हदीस (मुस्लिम सं. 2129, खं. 2, पृ. 557) में सुस्पष्ट कहा गया है कि अल्लाह ने मुहम्मद को मना किया कि वह अपना माँ, जो अविश्वासी है, के लिए माफ़ी न मांगे। इसके अलावा उपरोक्त अतिशयोक्तियां कुरान के उस प्रमाण के विरुद्ध है जिसमें कहा गया है कि मुहम्मद को सबसे पहला इलहाम उस समय हुआ जब वे हीरा नामक सुनसान गुफा में ध्यान कर रहे थे। उस समय वे चालीस वर्ष की आयु के थे। इससे सुस्पष्ट है कि इस घटना से पहले तक उनका कोई अन्य धर्म था, और यह धर्म अपने पूर्वजों के धर्म के अलावा अन्य कुछ और नहीं हो सकता था जो कि मूर्त्ति पूजा थी। यह कथन विचित्र प्रतीत होता है मगर यह ही सत्य है जिसे मुस्लिम विद्वान और इस्लामी धर्माचार्य छिपाने पर तुले हुए हैं। इतने पर भी वे अपने को ''पवित्र ईमानवाले'' कहते हैं। कुरान इस कथन की सच्चाई से प्रमाणित करती है जिसको मैंने यहाँ अभी कहा है।

''और इस तरह हमने (हे मुहम्मद) 'रुह' ('कुरआन') अपने हुक्म से तुम्हारी ओर 'बह्य' की। तुम नहीं जानते थे कि 'किताब' क्या चीज़ है और न 'ईमान' (के बारे में जानते थे कि वह क्या है) परन्तु हमने इसे प्रकाश बनाया है कि इसके द्वारा हम अपने बंदों में से जिसे चाहते हैं, मार्ग दिखाते हैं। और निस्संदेह तुम तो (हे मुहम्मद!) एक सीधा मार्ग दिखा रहे हो।'' (42 : 52, पृ. 886) ।संक्षेप में, अल्लाह मुहम्मद से कहता है—

(*i*) वह (मुहम्मद) कुरान के बारे में कुछ नहीं जानता था, जब तक कि उसे 'इलहाम' प्राप्त न होने लगे।

(*ii*) इसलिए उसके पास 'इलहाम' मिलने शुरू होने से पहले तक सच्चा दीन—'इस्लाम' नहीं था।

(*iii*) यह अल्लाह ही था जिसने खुद अपने 'इलहामों' को मुहम्मद को रोशनी मिलने का एक स्रोत बनाया।

(*iv*) अल्लाह उसी का मार्ग दर्शन करता है जिसे वह चाहता है, और मुहम्मद भाग्यवान् सेवकों में से एक है।

अत: अब यह शीशे की तरह स्पष्ट है कि *मुहम्मद पैदा होते समय मार्ग दर्शित नहीं था।* इसलिए वह जन्म से पहले पैगम्बर नहीं था, और न यह दुनिया ही उसकी रोशनी से पैदा हुई है। क्योंकि वह एक साधारण मनुष्य की भांति पैदा हुआ था। अत: उसके जन्म के साथ जुड़े सभी चमत्कार केवल मन घढ़न्त बातें हैं।

कुरान साफ़ कहता है कि मुहम्मद एक नश्वर प्राणी है जिसमें मानवीय प्रवृत्तियां होना स्वाभाविक है और इसलिए इसके विषय में प्राकृतिक नियम भी लागू होंगे जैसे 'गलती करना मानव स्वभाव है' :

"नि:संदेह हमने तुम्हें (हे मुहम्मद!) विजय प्रदान की एक खुली विजय ताकि अल्लाह तुम्हारे अगले गुनाह और पिछले सब क्षमा कर दे और अपनी नेमत तुम पर पूरी कर दे और तुम्हें सीधे मार्ग पर चलाए और अल्लाह तुम्हारी प्रभावपूर्ण सहायता करे।" (48 : 1-3, पृ. 939)

उपरोक्त आयतों के अनुसार क्या कोई इस सत्य को नकार सकता है कि मनुष्य होने के नाते मुहम्मद ने भूत काल में पाप किए थे और भविष्य में भी उन्हें दुहराने की सम्भावना है? उसे सीधा-सच्चा चलने के लिए अल्लाह की मदद और मार्ग दर्शन की आवश्यकता थी। तथा यह भी देखें—

"तो (हे मुहम्मद!) जान लो कि कोई 'इलाह' (पूज्य) नहीं सिवाय अल्लाह के, और अपने गुनाहों के लिए क्षमा की प्रार्थना करो, 'ईमानवाले' पुरुषों और 'ईमानवाली' स्त्रियों के लिए भी। अल्लाह जानता है, जहाँ तुम्हारी चलत-फिरत होती है और जहाँ तुम ठहरते हो।" (47 : 19, पृ. 932)

यदि मुहम्मद एक इन्सान नहीं होता तो वह कोई भूल नहीं करता होता और फिर अल्लाह को उसे यह आदेश देने की आवश्यकता नहीं थी कि वह अपने गलत कामों के लिए मांफी मांगे। ऐसा व्यक्ति भला परमेश्वर का प्रकाश कैसे हो सकता है, जो सृष्टि रचना का साधन हो सके?

आस्था विवेकहीनता की जड़ होती है क्योंकि यह आस्था ही है जो अपने अनुयायियों को सभी अनुचित, असंभव और बेतुकी बातें मानने को विवश करती है। यदि हम अपनी आँखों पर से अंधविश्वास का चश्मा उतार फेंकें, और मुहम्मद के जीवन पर दृष्टि डालें तो हम पाएंगे कि वह इंसान था। क्योंकि अन्य मरणशील प्राणियों की तरह उसे भी भूख प्यास लगती थी, सर्दी-गर्मी सताती थी। उसमें भी मानवीय संवेदनाएं थी, उसे भी प्रसन्नता-निराशा होती थी, वह भी स्त्रियों की कामना करता था और उनसे प्यार करता था, वह भी बीमार पड़ता था और उसे भी दवा की आवश्यकता होती थी। वह भी, ठीक उन्हीं प्राकृतिक नियमों के अनुसार पैदा हुआ था जैसे अन्य मनुष्य पैदा होते हैं और उसने भी एक सामान्य आयु का जीवन भोगा। वह मरा भी उसी प्रकार जैसे अन्य लोग मरते हैं। वास्तव में, हम उन

सभी कहानियों को नकार सकने की स्थिति में होंगे जो कि उसके बारे में कही गईं हैं, जब हम उसके बारे में हदीस की निम्नलिखित पुस्तकों को पढ़ते हैं। नीचे लिखे उदाहरण सुनान इब्ने माजाह से लिए गए हैं—

(*i*) पैगम्बर की सबसे छोटी पत्नी आयशा ने कहा *"मैंने किसी भी व्यक्ति को इतनी दुखी अवस्था (मरणासन्न स्थिति में) में नहीं देखा जैसी कि पवित्र-पैगम्बर की हालत थी।" (हदीस सं. 1685)*

(*ii*) दूसरी हदीस जो आयशा से जुड़ी है, मैं कहा गया है कि *"मृत्यु के समय पवित्र पैगम्बर ने एक लोटा से पानी लेकर अपने चेहरे पर मला और अल्लाह से दुआ मांगी कि वह उसे इस दुख में सहायता करे।" (हदीस सं. 1686)*

(*iii*) पैगम्बर की बेटी फातिमा ने जब अपने पिता को मरणासन्न अवस्था में देखा तो अत्यन्त दुखी होकर चिल्लाई *"ओ मेरे पिता के भयंकर दर्द।" तो पैगम्बर ने जबाव दिया कि तुम्हारे पिता ने इतनी अधिक वेदना भुगती है कि कयामत के दिन तक कोई भी दूसरा व्यक्ति ऐसा दर्द नहीं भोगेग॥" (हदीस सं. 1692)*

इन हदीसों से साफ़ पता चलता है कि मुहम्मद भी अन्य मरणशील प्राणियों की भाँति पैदा हुआ, और इन्हीं के समान मरा। अत: वह कोई अलौकिक मनुष्य होने का दावा नहीं कर सकता था। कुरान भी इसी सोच को प्रमाणित करती है कि मुहम्मद की जीवन पद्धति मानवीय कमजोरियों से मुक्त नहीं थी। नीचे लिखी कुरान की ज़ैद और ज़ैनव सम्बंधी कहानी भी इसी बात को सिद्ध करती है। हालांकि मुस्लिम विद्वानों ने जान-बूझकर उनकी पवित्रता सिद्ध करने के लिए इसकी ग़लत व्याख्या की है।

ज़ैद और ज़ैनव

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि इस्लाम में बेटे और बेटियों को गोद लेने की व्यवस्था नहीं है हालांकि यह अपने को सम्पूर्ण जीवन पद्धति होने का दावा करता है। यह कमी उस समय और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है जब हम देखते हैं कि अति प्राचीन रोमन कानूनी व्यवस्था में भी गोद लेने की व्यवस्था थी जिसमें कि किसी को पुत्र या पुत्री के रूप में गोद लेना मानव अधिकार का मूल आधार माना है और उसे अपने सगे बेटे अथवा बेटी के समान माना है। ऐसा इसलिए है क्योंकि संतान की आशा करना मानव जाति का स्वभाव है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति नैसर्गिक सन्तान (पुत्र/पुत्री) नहीं भी पा सकता है, ऐसे में लोगों को अधिकार है कि वे किसी अन्य के बच्चे को गोद लेकर उसे अपने पुत्र/पुत्री के समान पालें-पोसें व बड़ा करें।

प्रश्न यह है कि आखिर इस्लाम में बच्चा गोद लेने की कानूनी आज्ञा क्यों नहीं

है ? इस गुत्थी को समझने के लिए हमें इस्लाम के ज़ैद और ज़ैनव सम्बंधी विवरण को देखना होगा। ज़ैद का बचपन में ही अपहरण कर लिया गया था। जब वह आठ साल का ही था तो वह अक्काज़ के बाजार में एक गुलाम के रूप में बेचा जा रहा था। हकीमबिन हज्जाम बिन ख्वालिद ने अपनी चाची खादिजा बिन ख्वालिद की तरफ से उसे चार सौ दिरहम में खरीद लिया, जिसने बाद में मुहम्मद से शादी कर ली, और ज़ैद को उसे उपहार के रूप में दे दिया गया। ऐसा कहा जाता है कि जब ज़ैद के पिता हारीथ और उसके चाचा, काब को इस घटना का पता चला तो उन्होंने उसको आज़ाद करने के लिए मुहम्मद को पर्याप्त धन देने की पेशकश की। इस पर, ऐसा कहा जाता है कि मुहम्मद ने ज़ैद को पूरी आज़ादी दी कि या तो वह उसके संरक्षण में रहे अथवा आज़ाद होकर अपने पिता व चाचा के साथ चला जाए। कहा जाता है कि ज़ैद ने मुहम्मद के पास ही रहना पसन्द किया।

यह एक असाधारण घटना है कि कोई आठ वर्ष का बच्चा अपने मां-बाप की जगह अपने खरीददार मालिक को चुनता है। ऐसा माना जा सकता है कि उन दोनों के बीच असाधारण ममता का बन्धन बन चुका था और समय के साथ यह बन्धन और भी अधिक मज़बूत हो गया होगा क्योंकि मुहम्मद के अपने सभी सगे बटे पहले ही प्रारम्भिक आयु में ही मर चुके थे। इस बात की उस कथन से पुष्टि होती है कि मुहम्मद ज़ैद को हजार नामक स्थान पर ले गया, और वहाँ उसे उपस्थित लोगों के सामने करके सम्बोधित करते हुए कहा कि *''हे मनुष्यो! इस बात की गवाही देना कि मैंने ज़ैद को अपने बेटे के समान गोद ले लिया है। आज के बाद वह मेरा है और मैं उसका होकर रहूँगा।'' (मिश्कत खंड 3, पृ. 340)*

यह निश्चित रूप से सिद्ध करता है कि मुहम्मद ने ज़ैद को न केवल बेटे की तरह गोद लिया था बल्कि ऐसे प्यार भी किया जैसे किसी पिता को अपने बेटे को करना चाहिए।

जैनब कौन थी ?

वह मुहम्मद के दादा अब्दुल मुत्तालिब की बेटी उम्माया की पुत्री थी यानी ज़ैनब पैगम्बर मुहम्मद के बुआ की लड़की एवं उसकी चचेरी बहिन थी। उसका असली नाम 'बराह' था जिसको कि मुहम्मद ने उसकी पत्नी बन जाते के बाद बदलकर 'ज़ैनब' रख दिया।

हदीस (मुस्लिम 6 सं. 3330, खं. 2, पृ. 872-873) के अनुसार क्योंकि पैगम्बर मुहम्मद सामाजिक बराबरी का एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहते थे तो वे अपनी फ़ूफ़ी के पास अपने बेटे ज़ैद के लिए ज़ैनब का हाथ मांगने गए। इस पर वह राज़ी हो गई और ज़ैद व ज़ैनब की मंगनी हो गई। लेकिन विवाह में कुछ अड़चनें आईं क्योंकि ज़ैद, जो मुक्त किया हुआ गुलाम था, की अपेक्षा वह अपने खानदान

की विशेषता के प्रति सजग थी। इस विवाह को कराने में मुहम्मद ने पूर्वी देशों की विवाह पद्धति के अनुसार ज़ैद के पिता का कर्त्तव्य निभाया। आख़िर में ज़ैद,. ज़ैद बिन मुहम्मद (यानी मुहम्मद का बेटा) कहलाया।

मुस्लिम हदीस खण्ड दो के 872-73 पृष्ठ पर हदीस 3330 और इस पर लिखी 1876 नम्बर के नोट के अनुसार ''विवाह के पूरी तरह टूटने की नौबत आ गई और वह (पवित्र पैगम्बर) को इस बात का पूरा यकीन हो गया कि इस प्रकार के मानसिक रवैये से वे पति और पत्नी के रूप में और अधिक नहीं रह सकते हैं। उन्होंने इसलिए आखिरी कदम, तलाक़ का रास्ता लिया और एक-दूसरे से जुदाई ले ली।''

मुझे संदेह है कि उस नोट (न. 1876) के लेखक ने यहाँ तथ्यों को ग़लत प्रस्तुत किया है क्योंकि 'जुदाई का कदम' का अर्थ तलाक नहीं होता है जबकि तलाक़ की रस्म तीन चरणों में पूरी होती है। ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि वे अलग हो गए हों। यह कट्टरपंथियों का केवल एक अनुमान मात्र है। यदि इसको सच भी मान लिया जाए तो भी यह बात सिद्ध होती है कि ज़ैद और ज़ैनब अब भी विवाहित हैं और उनको इस्लामी कानून के अनुसार अन्तिम तालक नहीं हुआ है। वास्तव में, इस संदर्भ में 'तलाक़' शब्द कहीं आया ही नहीं है।

उपरोक्त हदीस (सं. 3330) का भाष्यकार फिर कहता है कि ''पवित्र पैगम्बर (प्रभु उन्हें शान्ति दें) पर ज़ैनब और उसके परिवार की बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी। उसने ही ज़ैनब की शादी ज़ैद के साथ करवाई थी जबकि उसका समस्त परिवार इस विवाह के विरोध में था। यह तो पैगम्बर मुहम्मद की बहुत बड़ी उदारता थी कि पैगम्बर ने स्वयं उसके साथ विवाह करके उसकी और उसके परिवार की खोई हुई प्रतिष्ठा को बचाया और इस झूठी धारणा को दूर कर दिया कि किसी मुक्त किए हुए गुलाम द्वारा पत्नी को तलाक देने के कारण उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा कम हो जाती थी।''

यह एक दूसरा ही बेतुका स्पष्टीकरण है। उस समय जबकि अरेबिया धार्मिक विश्वासों में बुरी तरह ग्रसित था, यह एक बहुत बड़े सम्मान की बात मानी जाती थी कि किसी लड़की का पैगम्बर के गोद लिए हुए बेटे के साथ उसकी शादी हो। शायद ऐसा होता भी हो। मगर इसके बारे में अधिक जानकारी के लिए हमें कुरान को ही देखना चाहिए। इस विषय में, अल्लाह मुहम्मद से इस प्रकार कहता है—

(i) ''और (हे नबी!) याद करो जब तुम उस व्यक्ति से कह रहे थे जिस पर अल्लाह ने एहसान किया था और तुमने भी जिस पर एहसान किया : अपनी पत्नी यहाँ कुरान ने स्पष्ट कह दिया है कि ज़ैनब, ज़ैद की पत्नी है, यह कहकर 'अपनी पत्नी' लेकिन मुल्ला अपनी झूंठी प्रशंसा दिखाने के लिए, कुरान की जानबूझकर

ग़लत अर्थ करके अवहेलना करते हैं)को अपने पास रहने दे (उसे न छोड़) और अल्लाह से डर। और तुम अपने ही में यह बात छिपाए हुए थे जिसे अल्लाह खोलने वाला था, तुम लोगों से डर रहे थे हालांकि अल्लाह इसका ज्यादा हक़ रखता है कि तुम उससे डरो। फिर जब ज़ैद को उससे कोई सरोकार न रहा तो हमने तुझ से उस स्त्री का विवाह कर दिया ताकि 'ईमानवालों' पर अपने मुंह बोले बेटों की पत्नियों के मामले में कोई तंगी न रहे, जबकि उनका उन स्त्रियों से कोई सरोकार न रह जाए। और अल्लाह का हुक्म पूरा होकर ही रहता है।" (33 : 37, पृ. 753)

यहाँ मैंने सरलता से समझने के लिए कुरान के विभिन्न अंशों को अलग-अलग ले लिया हैं जो उस प्रकार है—

(1) ये शब्द कि : "अपनी पत्नी को अपने पास रखो" साफ़ प्रगट करते हैं कि मुहम्मद ज़ैनब को पाना चाहता था, जबकि वह उस समय तक ज़ैद की पत्नी थी वर्ना खुदा मुहम्मद से यह न कहता कि वह सच्चाई को छिपा रहा है और उससे (खुदा) से डरने की उसे धमकी दी, न कि लोगों से।

उपरोक्त शब्दों के आधार पर कुछ भाष्यकारों ने यह अर्थ निकाला है कि ज़ैद ने मुहम्मद की इच्छा को जानते हुए, उसके पक्ष में ज़ैनब को तलाक देने का प्रस्ताव रखा। लेकिन पैगम्बर ने जैद को उसे अपने ही पास रखने को कहा, और ऊपरी दिखावे के लिए ये शब्द जोड़े कि "ईश्वर से डरो" मानो कि ज़ैद कोई ईश्वर विरोधी काम कर रहा था।

(2) कोई इस बात पर सन्देह नहीं कर सकता है कि इस समस्त घटनाक्रम के आरम्भ तक में ज़ैद और ज़ैनब के बीच तलाक नहीं हुआ था। कुरान की उपरोक्त आयत में कहीं भी आपसी जुदाई का कोई ज़िक्र नहीं हैं। इसलिए वे अब भी पति-पत्नी की तरह आपस में रह रहे थे। उपरोक्त नोट (1) को इस दृष्टि में पढ़ने से यह सुस्पष्ट हो जाता है।

(3) अरेबिया का परम्परागत से चला आ रहा यह बिना लिखा हुआ कानून था कि लोग अपने गोद लिए हुए बेटों की पत्नियों (विधवा या तलाक शुदा) से विवाह नहीं करते थे। अल्लाह ने, इस व अन्य मामलों में, इस व्यवस्था व क़ानून को मुहम्मद की शादी ज़ैनब से हो जाने के लिए, भंग कर दिया। मैं इस सारी व्याख्या के बाद, अन्त में, अल्लाह के पैगम्बर सम्बन्धी कानूनों की समीक्षा करूंगा।

(4) यह घटना पैगम्बर की पवित्रता सिद्ध करने के लिए ऐसे दिखाई गई है मानो कि यह सब अल्लाह की मर्जी या आज्ञा थी, और मुहम्मद के सामने उसे मानने के अलावा अन्य कोई चारा ही नहीं था। यह कैसी विचित्र दिमागी उपज है ?

इस घटना से तो ऐसा आश्चर्य लगता है मानो कि अल्लाह का अपना कोई अलग अस्तित्व है भी, या नहीं। वह तो मुहम्मद की छाया मात्र दिखाई देता है। ज़रा कुरान के नीचे लिखे सन्दर्भ को पढ़िए—

"और न किसी 'ईमानवाले' पुरुष को और न किसी 'ईमान' वाली स्त्री को यह हक़ है कि जब अल्लाह और उसका 'रसूल' किसी बात का फ़ैसला कर दें तो फिर उन्हें अपने मामले में कोई अधिकार रहे; और जो कोई अल्लाह और उसके 'रसूल' की अवज्ञा करे, तो वह खुला गुमराहों में पड़ गया।" (33 : 36, पृ. 752)

इससे बिना किसी शक़, शुबह और संदेह के सिद्ध होता है कि अल्लाह और मुहम्मद दोनों एक ही व्यक्ति हैं क्योंकि वे दोनों एक ही साथ फैसला व आदेश करते हैं। इसके साथ ही मुहम्मद के हुक्म की अवज्ञा (हुक्म उदूली) अल्लाह की अवज्ञा है तथा इसके विपरीत भी मुहम्मद की अवज्ञा अल्लाह की अवज्ञा है।

इसके अलावा एक बात और छूट गई है जिसे हदीस (मुस्लिम सं॰3330 खं. 2, पृ. 872) ने पूरा किया है, जो कहती है कि—

"अल्लाह के दूत (प्रभु उसे शान्ति दे) ने ज़ैद को कहा कि वह उसे (यानी ज़ैनब को) उसके बारे यानी पैगम्बर (मुहम्मद) के बारे में कहे।" इसका क्या मतलब है? इस हदीस का नोट नं. 1877 (पृ. 873) कहता है कि "मुहम्मद (प्रभु उसे शान्ति दे) की बिल्कुल साफ़ नेक नीयती को देखिए कि उसने ज़ैद को ही उसके ज़ैनब के साथ अपनी शादी का प्रस्ताव भेजा।"

भला व्याख्याकार के इस नैतिक मूल्य का स्तर तो देखिए कि वह उसे "बिल्कुल साफ़ नैक नीयती" का उदाहरण बताता है कि कोई पति अपनी ही पत्नी (या फिर पूर्व पत्नी) के विवाह या प्रेम का प्रस्ताव खुद ही लेकर किसी दूसरे व्यक्ति के पास जाता है!

फिर भी इस घटना के भलीभांति समझने के लिए, मैं हदीस (मुस्लिम, सं. 3450, खण्ड 2, पृ. 901) को दुबारा दुहराता हूँ जो कहती है कि पैगम्बर के नौ पत्नियाँ थी और उसने प्रत्येक पत्नी के साथ के लिए एक निश्चित रात तय कर रखी थी। हालांकि "प्रत्येक रात उसकी सभी पत्नियां किसी एक के घर में एक साथ इकट्ठी होती थीं जहाँ कि उसे आना होता था (और उस रात वहाँ रहना होता था)।" एक रात जब पैगम्बर आयशा के घर में था, ज़ैनब वहाँ चली गई। जबकि वह (पवित्र पैगम्बर) आयशा के साथ सोया हुआ था, उसने अपना हाथ उसे (ज़ैनब को) पकड़ने के लिए आगे फैलाया, इस पर वह (आयशा) बोली (कौतूहलतावश) : "क्या यह जैनब है? अल्लाह के पैगम्बर (प्रभु उसे शान्ति दे) ने अपना हाथ वापिस ले लिया। "इन दोनों के बीच कहा-सुनी हो गई। बाद में जिनकी आवाज़ें ऊंची हो गईं....।"

इसका साफ़ मतलब यही है कि जब पैगम्बर आयशा के साथ सो रहे थे तो उन्होंने रात के अंधेरे में चुपके से जैनब का भी हाथ थाम रखा था। जैसे ही आयशा को इसका पता चला, तो वह नाराज़ हो गई और इसके कारण उन दोनों के बीच

एक शोर-शराबा हो गया। हालांकि हदीस का व्याख्याकार नोट नं. 1914 में कहता है कि "इससे पवित्र पैगम्बर (प्रभु उन्हें शांति दे) की हार्दिक न्याय भावना का पता चलता है।"

यह तो न्याय की विचित्र परिभाषा है। आयशा की बारी की रात को उसे अपने पति को केवल अपने तक बनाए रखने का पूर्ण अधिकार था। उसी समय, ज़ैनब का भी हाथ पकड़ना, आयशा के अधिकारों का उल्लंघन है। आयशा का इसे ना पसन्द करना और क्रोधित होना, इस बात की पुष्टि करता है।

लोगों को आश्चर्य है कि अल्लाह को उस समय अरेबिया में मौजूद गोद लेने सम्बंधी कानून को रद्द करने की सोचने की आवश्यकता ही क्यों हुई ? यह सच है कि एक गोद लिए हुए बच्चे से खूनी-रिश्ता नहीं होता है फिर भी कानूनी तौर पर वह एक बेटा या बेटी माना जाता है। इसी मापदण्ड से एक सौतेली मां के साथ ही खूनी रिश्ता नहीं होता है। फिर भी एक सौतेला बेटा उसकी मां की भांति देखभाल करता है और उसके साथ विवाह नहीं करता है।

यह कितना आश्चर्य है कि पैगम्बर की पत्नियों को कानूनी तौर पर 'ईमानवालों' की माताएं मानी गई हैं (33 : 6, पृ. 745)। इसके बावजूद कि उनका पैगम्बर की पत्नियों से कोई आपसी खून का रिश्ता नहीं था जबकि पैगम्बर किसी भी ईमानवाले की विधवा अथवा तलाक शुदा पत्नी से विवाह कर सकता था।

यह किस प्रकार का कानून है ? कानून तो कानून ही है जबकि वह प्रत्येक के लिए बिना सामाजिक भेदभाव एवं समानता के आधार पर लागू किया जाए। पहले तो सच्चाई यही है कि पैगम्बर की सुविधा के लिए गोद सम्बंधी कानून का रद्द करना स्वयं अल्लाह के लिए अपमानजनक है जो कि 'सर्वोत्तम न्यायाधीश' होने का दावा करता है। (95 : 8, पृ. 1177)

वह कानून निश्पक्ष होना चाहिए जो कि छोटे और सम्पन्न, दुर्बल और शक्तिशाली, तथा दुराचारी और सदाचारी सबके साथ पूरी निश्पक्षता के साथ अपनाया जाए जैसा कि कुरान में भी निर्दिष्ट किया गया है—

(i) "हे 'ईमानवालो'! (अल्लाह के लिए) इन्साफ़ पर मज़बूती के साथ जमे रहने वाले बनो; अल्लाह के लिए (इन्साफ़ की) गवाही देते हुए, यद्यपि वह गवाही तुम्हारे अपने माता-पिता और नातेदारों के विरुद्ध ही क्यों न हो, कोई धनवान् हो या निर्धन, अल्लाह उन दोनों से ज्यादा करीब है। तो तुम न्याय करने में (अपनी तुच्छ) इच्छाओं का पालन न करो। यदि तुम हेर-फेर करोगे या कतराओगे तो जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसकी खबर रखने वाला है (4 : 135, पृ. 245-246)

(ii) इसके अलावा और देखिए, : *"हे 'ईमानवालो'! अल्लाह के लिए इंसाफ़ पर मज़बूती के साथ क़ायम रहने वाले बनो। इंसाफ़ की गवाही देते हुए और ऐसा*

न हो कि किसी गिरोह की दुश्मनी तुम्हें इस बात पर उभार दे कि तुम इन्साफ़ करना छोड़ दो। इंसाफ करो यही 'तक़वा' (धर्म परायणता) से लगती हुई बात है। अल्लाह से डरते रहो। निःसंदेह अल्लाह जो कुछ तुम करते हो, उसकी खबर रखता है।" (5 : 8, पृ. 259)

निश्चय ही ये न्याय के सर्वोच्च सिद्धान्त हैं जिन्हें कि पैगम्बर मुहम्मद के साथ और भी अधिक कठोरता व नियमितता के साथ लागू करना चाहिए क्योंकि वे अल्लाह द्वारा व्यवहार करने के लिए एक आदर्श के रूप में भेजे जाने का दावा करते हैं—

"निश्चय ही तुम लोगों के लिए अल्लाह के 'रसूल' में एक उत्तम आदर्श था। उस व्यक्ति के लिए जो अल्लाह और 'अन्तिम दिन' की आशा रखता हो, और अल्लाह को अधिक याद करे" (33 : 21, पृ. 748)

अतः अब यह सुस्पष्ट है कि पैगम्बर, जो कि पृथ्वी पर अल्लाह के प्रतिनिधि के रूप में है, को चाहिए कि वह दैवी बुद्धिमता और दैवी कानून की पूर्णता को अपने आचरण से सिद्ध करे। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो स्पष्ट है कि—

(*i*) वे न तो ईश्वर के प्रतिनिधि हैं और न आचरण के आदर्श हैं, अल्लाह के कानून को अवज्ञा कारण। और दूसरे,

(*ii*) यदि अल्लाह स्वयं ही पैगम्बर को अपने ही कानूनों से मुक्त रखता है, तो अल्लाह के कानून एक मजाक से अधिक कुछ नहीं रह जाएंगे क्योंकि यदि जब अल्लाह का प्रतिनिधि-पैगम्बर ही स्वयं उसके कानूनों का पालन नहीं कर सकता है तो अल्लाह फिर साधारण ईमानवालों से उसकी आज्ञाओं का पालन करने की कैसे आशा कर सकता है?

वास्तव में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं जहाँ कि स्वयं अल्लाह ने मुहम्मद को अपने मूलभूत कानूनों से अपवाद रूप मुक्त किया है और उनसे छूट दे दी है। यह तो कानून का मज़ाक है और सिद्ध करता है कि कुरान, जैसा कि इसके दैवी होने का दावा किया जाता है, दैवी कानून की पुस्तक नहीं है। इसकी अपेक्षा यह तो मुहम्मद साहब की रचना है, और इस तरह वे स्वयं जैसा चाहें वैसा आचरण कर सकते हैं और अल्लाह एक कल्पना मात्र है जो उसकी इच्छा पूर्ति करता प्रतीत होता है। इसे विस्तार में जानने के लिए मेरी पुस्तक 'क्या इस्लामी कानून वास्तविकता है अथवा कल्पना? को पढ़ें। फिर भी इस चर्चा को पूरा करने और अपनी बात सिद्ध करने के लिए दो उदाहरण और प्रस्तुत करता हूँ—

"वह 'ईमानवाली' स्त्री, जो अपने-आपको 'नबी' के लिए हिबा कर दे, यदि 'नबी' उससे विवाह करना चाहे-यह (विशेष अधिकार, हे मुहम्मद!) केवल तुम्हारे लिए है, दूसरे 'ईमानवालों' के लिए नहीं है—हमको मालूम है जो कुछ हमने

उनकी 'पत्नियों' और 'लौंडियों' के बारे में उनके लिए जाब्ता बनाया है—ताकि तुम्हारे ऊपर कोई तंगी न रहे, और अल्लाह बड़ा क्षमाशील है।" (33 : 50, पृ. 755)

जैसाकि हम जानते हैं कि कुरान एक समय में केवल चार ही पत्नियां तक रखने की आज्ञा देता है। परन्तु इस आयत के अनुसार पैगम्बर बिना किसी बंधन के जितनी भी पत्नियां चाहें, उतनी कर सकते हैं। यही कारण है कि उसके एक ही समय में कम-से-कम नौ पत्नियाँ थी। हालांकि पैगम्बर मुहम्मद की जीवनी के कुछ लेखक बाईस पत्नियाँ तक होने का संकेत देते हैं।

(2) "और यदि तुम्हें भय हो कि यतीमों के मामले में न्याय न कर सकोगे तो स्त्रियों में से जो तुम्हारे लिए जायज़ हो दो-दो, तीन-तीन, और चार-चार तक विवाह कर लो और यदि तुम्हें इसका भय हो कि उनके साथ समता का व्यवहार न कर सकोगे। तो फिर एक ही पर बस करो या वह लोंडी जो तुम्हारे कब्जे में हो उसी पर बस करो। इसमें तुम्हारे ज्यादती से बचे रहने की अधिक सम्भावना है" (4 : 3, पृ. 220)

यहाँ एक से अधिक पत्नियां रखने या बहुपत्नीवाद की मौलिक शर्त, सब पत्नियों के साथ समानता और न्याय का व्यवहार होना है। अत: कुरान स्पष्ट कहती है कि यदि कोई मनुष्य अपनी समस्त पत्नियों के साथ समानता का व्यवहार नहीं कर सकता है तो उसे केवल एक ही पत्नी रखनी चाहिए।

वास्तविक व्यवहार में, किसी मनुष्य का सभी पत्नियों का उनके गुणों व योग्यताओं में विभिन्नता होने के कारण, समानता का व्यवहार रख पाना सम्भव नहीं है। पैगम्बर भी अपनी समस्त पत्नियों के साथ समानता एवं पारस्परिक सन्तुलन नहीं रख सके थे जिन्होंने उनसे कठोर वचन कहे थे। कुरान इसका प्रमाण है कि :

'हे 'नबी' की स्त्रियो! तुम दूसरी स्त्रियों में से किसी भी तरह नहीं हो। यदि तुम परहेज़गार रहना चाहती हो, तो दबी जबान से बात न किया करो कि वह व्यक्ति जिसके दिल में रोग है लालच में पड़ जाए, बल्कि साफ़-साफ़ बात करो।" (33 : 32, पृ. 751)

यहाँ यह सुस्पष्ट है कि पैगम्बर की पत्नियों ने उनसे अभद्र और अपमानजनक व्यवहार किया। (66) सूरा से जुड़ी परम्परा के अनुसार एक प्रमाण देखिए : "हफ्साह ने पैगम्बर को अपने कमरे में एक कोप्टिक (मिश्री ईसाई) लड़की मार्या के साथ देखा जिसे कि मिश्र के शासक ने उन्हें भेंट किया था। वह भी उस दिन, जब कि पैगम्बर के निश्चित किए हुए क्रम के अनुसार वह आयशा का दिन था। हफ्साह ने पैगम्बर को धमकी दी कि वह सब कुछ आयशा को बता देगी जो कि उसने देखा है। इसके कारण उन्हें बड़ी परेशानी हो गई और उन्होंने 'मार्या से सभी सम्बंध

विच्छेद करने की कसम खाई।' पारिवारिक कलह इतनी अधिक बढ़ी कि तंग आकर पैगम्बर ने सभी पत्नियों को तलाक देने की धमकी दी (66 : 5, पृ. 1054) और केवल मार्या के साथ रहने के लिए सबको छोड़कर एक माह के लिए बाहर चले गए। यहाँ पैगम्बर के करीबी अनुयायियों ने भी कुरेश औरतों को छोड़ कर एक मिश्री गुलाम लड़की के साथ चले जाने को, उचित नहीं ठहराया।

हफ्साह उमर की बेटी थी, जो बाद में दूसरे खलीफ़ा बने। एक दिन उन्हें अपनी बेटी को पैगम्बर से अपमानपूर्वक व्यवहार करने के लिए डाँटना पड़ा था। उनसे माफ़ी मांगने की जगह, हफ्साह ने बतलाया कि पैगम्बर की सभी पत्नियाँ उनसे इसी प्रकार बोलीं थी। पैगम्बर की पत्नियों को उमर का हस्तक्षेप करना ठीक नहीं जंचा, और उन्होंने उससे कह दिया वे अपने काम-से-काम रखें। वास्तव में, वह पैगम्बर के परिवारिक समस्याओं से अत्यन्त परेशान था।

उस सब गम्भीर स्थिति का मुख्य कारण पैगम्बर का अपनी पत्नियों के साथ असमान व्यवहार था। वास्तव में आर्थिक दृष्टि से इन सबके साथ समानता का व्यवहार होता था। लेकिन भावनात्मक स्तर पर सबके साथ समानता गैर-मुमकिन थी। इस सीमा की पारिवारिक कलह का कुरानी हल का यही तकाज़ा था कि पैगम्बर की केवल एक ही पत्नी होनी चाहिए थी। मगर ऐसा नहीं हुआ। आप स्वयं देखिए—

"तुम उनमें से जिसे चाहो अपने से अलग रखो और जिसे चाहो अपने साथ रखो, और जिनको तुमने अलग कर दिया हो यदि उनमें से किसी-को अपने पास बुला लो, तो इसमें तुम पर कोई दोष नहीं" (33 : 51, पृ. 756)

सरल शब्दों में, उपरोक्त आयतों का यही अर्थ है कि पैगम्बर समानता व न्याय के कानून से बंधे नहीं थे। इन कानूनों को लागू करवाने की अपेक्षा अल्लाह ने भी पैगम्बर को छूट दे दी वह अपनी पत्नियों के साथ मनमाना व्यवहार करे।

पाठको! इस अध्याय में दिए गए सभी विषय गम्भीरता से विचारणीय हैं क्योंकि वे पैगम्बरपन के लक्षण और उद्देश्य की ओर गम्भीर ध्यान आकर्षित करते हैं।

■■

अध्याय तीन

पैगम्बर का स्वरूप

पैगम्बरपन के स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है कि ध्रुवीकरण के अस्तित्व के कानून को समझा जाए। इसका मतलब यह हुआ कि जिस प्रकार सृष्टि में भौतिक पदार्थों के अस्तित्व के लिए ऋणात्मक और धनात्मक आवेशों में सन्तुलन आवश्यक होता है, उसी प्रकार का सन्तुलन सामाजिक व्यवस्था में भी होता है जो कि अनेक परस्पर विरोधाभासी शक्तियों के सन्तुलन का बना होता है। यही कारण है कि जैसे हम अंधेरे के बिना रोशनी की, कड़वेपन के बिना मीठे की, और बुराई के बिना अच्छाई की कल्पना नहीं कर सकते हैं, ठीक इसी प्रकार *पैगम्बरपन स्वतंत्र चिन्तन या इच्छा की विरोधी अवधारणा* है। इस कथन की सच्चाई को और अधिक स्पष्टता के साथ समझने के लिए मुझे स्वतंत्र इच्छा की अवधारणा को समझाना होगा।

स्वतंत्र इच्छा क्या है?

मनुष्य का जीवन स्वतंत्र इच्छा से प्रारम्भ होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि पत्थर और सितारे जीवनरहित हैं, हालांकि उनमें स्थायीपन और चमक है। उनकी अपनी निजी न कोई इच्छा होती है, और न वे कोई काम स्वयं कर ही सकते हैं। इसीलिए उनमें चुनाव करने की कोई क्षमता नहीं होती है। इसके विपरीत सबसे छोटे कीटाणु जैसे एक अमीबा की अपनी इच्छा होती है, और जैसे वह चाहता है, वैसे चलता-फिरता है। यही फर्क होता है जड़ और चेतन पदार्थों में। यह अन्तर यानी *इच्छा का होना और उनमें चुनाव करने की योग्यता होना ही जीवन है।*

फिर यदि मुक्त इच्छा ही पैदा न हो तो जीवन का अस्तित्व यांत्रिक हो जाता है। कानून की परिधि में पूरी तरह बंधा हुआ रहता है। लेकिन मुक्त इच्छा प्राकृतिक कानून की परिधि को सीमित कर देती है और जीवाणुओं को क्रिया करने की आज़ादी देती है जिससे आज़ादी जीवन का एक अभिन्न अंग बन जाता है। वास्तव में उन्मुक्त इच्छा ही नवीन ऊर्जा का दूत है जिसे 'नैतिकता' कहा आता है जो किसी बाहरी दबाव के बिना काम करती है। क्योंकि किसी विषय पर फैसला करने के लिए आत्मचेतना की स्वीकृति और ज्ञान की आवश्यकता होती है। और ये दोनों तत्त्व स्वतंत्र इच्छा या चिन्तन के अभिन्न अंग हैं। यह बात खास तौर पर तब सच होती है जबकि हम यह अनुभव करते हैं कि आत्मचेतना की सजगता हमारे जीवन का अभिन्न अंग है।

इस प्रकार हम कह सकते है कि इच्छा, स्वतंत्रता, नैतिकता, आत्मचेतना और ज्ञान, स्वतंत्र इच्छा के मौलिक अंग है। मगर यह सफलतापूर्वक काम नहीं कर सकती है यदि इसके सहयोगी तत्वों को अपनी क्षमता प्रगट करने का पूरा अवसर ही न मिले। क्योंकि जीवन स्वतंत्र इच्छा से प्रारम्भ होता है, तो जीवन का लक्ष्य किसी अलौकिक शक्ति जैसे परमेश्वर की पूजा या उसके सामने साष्टांग दण्डवत आदि द्वारा उसके प्रति समर्पण से पूरा नहीं हो जाता है लेकिन *जीवन का उद्देश्य तो आत्म विकास है जो कि स्वतंत्र इच्छा द्वारा व्यक्त होता है* यही कारण है कि हम अनुचित आदेशों, अन्यायों व बलात् थोपी गई बातों का विरोध करते हैं।

क्योंकि ध्रुवीकरण प्रकृति का नियम है, इसलिए स्वतंत्र चिन्तन की अवधारणा, जिसका अर्थ है नैतिक चुनाव और तदनुसार कार्य करने की स्वतंत्रता जिसका कोई एक विरोधी गुणवाला भी होना चाहिए। यह पैगम्बरपन ही है जो कि स्वतंत्र चिन्तन का विरोधी है, क्योंकि यह आचरण को स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने की क्षमता को कम करने की कोशिश करता है। यह आस्था की लगाम पकड़ कर, मानवीय, बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक, सभी प्रकार से रोकने की कोशिश करता है। मानवता का प्रकाश स्तम्भ विवेक है, जो कि मनुष्य को अन्य प्राणियों के ऊपर श्रेष्ठता या वरीयता प्रदान करता है, जबकि पैगम्बरपन आस्था की छड़ी द्वारा इसे हटा देता है, जो कि एक प्रकार के अंधेर की छाया है। इस प्रकार मनुष्य विवेकशील होने से वंचित हो आता है और काल्पनिक एवं निराधार बातों पर विश्वास करने लगता है। जैसे कि चमत्कार के रूप में, मोज़िज ने भागते हुए इज़राईलियों को रास्ता बनाने के लिए उसने समुद्र के दो भाग कर दिए, जीज़स का कोई भौतिक पिता नहीं था और पैगम्बर मुहम्मद ने चन्द्रमा के टुकड़े कर दिए। यही तरीका है जिससे धार्मिक आस्था के प्रभाव द्वारा मानव जीवन के आधारीय दृष्टिकोण में विसंगतियों का जन्म होता है।

हावी होने की चाह क्या है?

हावी होने की चाह के महत्त्व को बतलाने के लिए मैं यहाँ कहना चाहूँगा कि जैसे सृष्टि में एक श्रेणीबद्धता है वैसी ही श्रेणीबद्धता हमारे सामाजिक ढांचे में भी है। श्रेणीबद्धता की अवधारणा एक पिरेमिड की रचना से भलीभांति समझी जा सकती है जिसका आधार तो चौड़ा होता है मगर शीर्ष ऊंचाई बढ़ने के साथ घटता जाता है। इसी प्रकार, मानव समाज, जनसमूह के कारण आधार पर तो सबसे चोड़ा व बड़ा होता है, लेकिन जैसे-जैसे सामाजिक स्तर उठकर ऊंचा होता जाता है तो सबसे ऊपर एक ही व्यक्ति दिखाई देता है जिसे राजा, डिक्टेटर, अध्यक्ष, प्रधानमंत्री आदि कहा जा सकता है।

वह कौन सी क्रिया व शक्ति है, जो कि मनुष्य को, सम्राटीय डिक्टेटरीय, अध्यक्षीय अथवा प्रधानमंत्रीय स्तर पर पहुंचा देती है ? यह है, दूसरों पर हावी होने की प्रबल चाह, जो कि किसी मनुष्य को अपने साथियों से ऊपर उठने की प्रेरणा देती है और दूसरों पर अपनी इच्छा थोप कर अपनी विशेषताएं सिद्ध करती है। यह है हावी होने की चाह। हालाँकि सामाजिक व्यवस्था श्रेणीबद्ध है फिर भी यह प्राकृतिक श्रेणीबद्धता से भिन्न है क्योंकि पहली तो व्यक्ति की महत्त्वांकाओं पर आधारित होती है जो कि शक्ति पाने के साथ-साथ बढ़ती जाती है, लेकिन प्राकृतिक व्यवस्था उदासीन एवं व्यक्तित्वरहित होती है क्योंकि यह तो उसके कार्यकलापों पर आधारित होती है. न कि महत्त्वकांक्षाओं पर। सूर्य बहुत बड़ा और जीवन दाता है, फिर भी यह पृथ्वी से बड़ा नहीं हैं क्योंकि सूर्य की भव्यता उसके कार्य में हैं और इस प्रकार वह स्वभाव से उदासीन है। इसके विपरीत, सामाजिक श्रेणीबद्धता हावी होने की भावना से उद्दीपित होती है, जो कि मनुष्य की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं के कारण दूसरों पर अपनी प्रभुता जमाना चाहती है। हालाँकि हावी होने की भावना अनेक प्रकार की हो सकती है परन्तु इसके दो मुख्य क्षेत्र एवं प्रकार हैं—वे हैं—सांसारिक और आध्यात्मिक।

सांसारिक हावीपन

चाहे सांसारिक क्षेत्र हो अथवा आध्यात्मिक, मनुष्य में दोनों ही क्षेत्रों में हावी होने की चाह मुख्य है। सांसारिक क्षेत्र में प्रभुता का अर्थ है— शासकीय पद, प्रतिष्ठा और उसकी चमक-दमक का होना। जैसे कि किसी राज्य का अध्यक्ष, प्रधानमंत्री, राजा आदि होना। शासक का उद्देश्य सदैव एक ही होता है कि लोगों को बताना कि किस प्रकार नियमों को मानते हुए नैतिक जीवन जीया जाए। सांसारिक क्षेत्र में शासक सदैव यही चाहता है कि आम जनता को यही विश्वास रहे कि शासक अपने कष्टों की चिन्ता किए बगैर और अपनी खुशियों की बलि देकर भी, जनता का कितना ध्यान रखता है, और इस प्रकार वह नियमों के माध्यम से अपनी मन-मर्ज़ी चलाना चाहता है, जिन्हें वह अपनी सुविधानुसार अपने ही हित में इस्तेमाल करता है। उदाहरण के लिए, लोगों के वोट लेने के लिए, वह प्रचारित करेगा कि गरीबी सबसे बड़ी सामाजिक बुराई है, और फिर वह धनी लोगों से धन लेकर गरीबों में बांट कर उनका समर्थन पाने की कोशिश करेगा। इसकी जगह यदि वह अपनी बुद्धि व विवेक से राज्य की नीतियों द्वारा धन अर्जित कर गरीबों की परेशानियां दूर करने की कोशिश करे तो यह और भी सराहनीय होगा। इस प्रक्रिया को अपनाने का उद्देश्य लोगों के वोट पाकर अपनी प्रभावी स्थिति बनाए रखना होता है।

सांसारिक प्रभुता थोड़े दिनों की होती है क्योंकि जब उस व्यक्ति का निधन हो जाता है तो उसके साथ उसकी हावी होने की इच्छा भी स्वत: ही समाप्त हो जाती है। यह एक-दूसरी बात है कि उसके बाद यह एक वंश परम्परा का रूप ले ले और कोई पिता अपने परिवार की प्रतिष्ठा व परम्परा को बनाए रखने के लिए अपने पुत्रों को इस योग्य बनाने का प्रयास करे। यद्यपि पारिवारिक-प्रतिष्ठा स्वयं उसके प्रतिस्थापक की क्षमता से प्रेरणा लेती है और इस प्रकार बाद के सभी उत्तराधिकारियों की श्रेणी उसके बाद की होती है जब तक कि कोई उत्तराधिकारी विशेष योग्यताओं वाला ही सिद्ध न हो जाए।

दूसरों पर हावी होने की चाह किसी विशेष वर्ग तक ही सीमित नहीं होती है। सभी छोटे और बड़ों की दूसरों पर हावी होने की आकांक्षा की सम्भावनाएं हो सकती हैं। वास्तव में हावी होने की चाह आत्मविकास का साधन होने के कारण है। यह तो विकासवादी प्रक्रिया का एक अंग है। अत: यह स्वयं में कोई बुराई नहीं है। लेकिन यदि नैतिक आदर्शों की बलि देकर, और अपने व्यक्तिगत लाभ व उन्नति के लिए इसका प्रयोग किया जाए तो यह एक बुराई हो जाती है। यद्यपि ऐसे अवसर आते हैं जब एक प्रभावशाली व्यक्ति समाज कल्याण की भावना के प्रति निष्ठावान होता है। लेकिन ऐसा बहुत कम होता है जो नियम की अपेक्षा अपवाद अधिक होता है।

यह अन्त:प्रेरणा शक्ति क्या है ? एक मोटरकार के बारे में उसके ईंधन की दृष्टि से सोचिए। कोई गाड़ी कितनी ही बड़ी क्यों न हो, परन्तु वह बिना ईंधन के एक इंच भी नहीं चल सकती है जो कि उसकी प्रेरक शक्ति का काम करती है। आचरण के विज्ञान-मनोविज्ञान की भाषा में, इसे ही "अन्त:प्रेरणा" कहते हैं। अन्त:प्रेरणा, प्रेरक शक्ति के लिए एक दूसरा शब्द है। इस प्रेरणा का व्यावहारिक स्वरूप प्रमुखतावादी आनुपूर्वी परम्पराओं तथा घरेलू चिड़ियों, उल्लुओं, बेबूनो, व अन्य कीड़े-मकोड़ों में पाया जाता है। इस विषय की पैक-आर्डर के द्वारा भली भांति व्याख्या कर दी गई है जो कि मुर्गियों में अक्सर देखी जाती है जहाँ कि कोई 'अ' मुर्गी दूसरी छोटी व कमजोर 'ब' मुर्गी को, और वह उससे भी कमज़ोर तीसरी 'स' मुर्गी को चोंच मारती है। इस प्रकार, जिसे कि दमनकारी व्यवहार कहा जाता है, वही हावी होने की प्रेरणा का प्रगटीकरण है। इसमें औचित्य की कमी होती है तथा अपनी पाशविक शक्ति के प्रदर्शन के द्वारा अपनी उत्तमता सिद्ध करने का प्रयास करती है। कोई इसे जंगलराज का नाम भी दे सकता है जो कि "ताकतवर ही सच्चा है", कहावत की पुष्टि करता है।

इससे भी अच्छा उदाहरण जानवरों के *'लेक व्यवहार'* का दिया जा सकता है। इस *'मेटिंग सीजन'* में देखा जा सकता है जहाँ कि नर-सदस्य अपनी श्रेष्ठता सिद्ध

करने के लिए आपस में लड़ते हैं। अपने आक्रामक व्यवहार के द्वारा, विजेता पशु पहले भोजन, पानी व यौन क्रियाओं में वरीयता का दावा करता है। इस प्रकार हावी होने की चाह स्वयं वरीयता पाने की भावना से जुड़ जाती है जिसे कि वीभत्सता के प्रदर्शन द्वारा अनुभव किया जाता है। इसी प्रकार दीमकों का व्यवहार इसी प्रवृति का एक दूसरा उदाहरण है। वे रासायनिक विसर्जन से इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त करते हैं जो कि अपने छोटे जीवाणुओं को गुलाम बना देते हैं जो अपने नवजात शिशुओं की देखभाल करते हैं।

हावी होने का सबसे प्रभावी तरीका, किसी दूसरे में किसी का भय पैदा करना है। जीव विज्ञानियों ने इस बात के अनेक प्रमाण दिए हैं। वे *मैकाक्यू* बन्दरों की बन्दरियों को 'भेंट' करने के उदाहरण देते हैं। 'भेंट करने' पद का अर्थ यहाँ यौनासक्त बन्दरियाँ जो स्वयं को नर बन्दर को यौन-सम्बन्धों के लिए भेंट करती हैं। इस प्रकार का नर बन्दर अपनी पाशविक शक्ति का प्रतीक होता है जिससे एक उच्चता का भाव पैदा होता है। लुभाने के लिए आमंत्रण देना निश्चय ही सबसे विनम्र व्यवहार है जिससे कि प्रभावी व्यक्ति आनंदित होता है। हावी होने की चाह का मुख्य उद्देश्य भी यही होता है जो कि दूसरे व्यक्ति का पाशविक शक्ति द्वारा पूर्ण आत्म समर्पण व अपमान किया जाए।

इतिहास में भरे अनेक बलवान विजेताओं की विजयों के पीछे यही हावी होने की प्रवृत्ति थी जिसके कारण उन्होंने मनुष्य के भयभीत होने की प्रवृत्ति का लाभ उठाया। उनकी विजयों की पराकाष्ठा सीमा भी इस बात से जुड़ी थी कि उनमें हावी होने की प्रवृत्ति कितनी बड़ी, दृढ़ और प्रबल है। 'अलेक्ज़ेक्टर दी ग्रेट' सारे विश्व में अपना साम्राज्य स्थापित करना चाहता था, और विजेता तैमूर लिंग ने घोषणा की कि क्योंकि दुनिया का एक ही ईश्वर है, इसलिए इस पृथ्वी की राजा भी एक ही होना चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए अलेक्जेन्डर ने उन लोगों को आंतकित किया जो उसके साम्राज्य का विरोध करते थे और तेमूरलिग ने विजित देशों के युद्ध में मारे गए सैनिकों के सिरों की मीनार बनाकर समस्त विदेशी लोगों को डराने व उन पर राज्य करने का नया तरीका निकाला।

इन नर संहारों और विध्वसों की पीछे यही व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा थी कि विजेता की सभी बातें सबसे बड़ी मानी जाए। यही कारण है कि महान् अलेक्ज़ेंडर चाहता था कि उसे ईश्वर के समान माना और पूजा जाए। इतिहास साक्षी है कि जब उसने नवम्बर 332 बी सी में प्रेटोनियम से मरुभूमि सीवा के लिए प्रस्थान किया, जहाँ अमोन का सन्त खड़ा था जिसने उसे 'देवताओं का राजा' कहकर सम्बोधित किया जिसे सन्त द्वारा 'अमोक के पुत्र' की उपाधि के अलंकृत किया। अलेक्ज़ेन्डर जिसने बहुत समय से दैवत्व पाने के मनसूबे बनाए हुए थे, स्वयं के लिए 'ईश्वर

पुत्र' के सम्बोधन से वह स्तन्ध रह गया। तब उसे बतलाया गया कि मैसीडोनिया के राजा, फिलिप की हालांकि उसकी मां ओलम्पियास से शादी हुई थी, उसका सच्चा पिता नहीं था क्योंकि उसकी मां का गर्भ, देवताओं के देवता, अमोन के तीरंदाजी के स्पर्श से धारण हुआ था। क्योंकि वह चाहता था कि उसके ऐसा राजकुमार उत्पन्न हो जो मिश्र को परसियनों के चंगुल से बचा सके। सन्त की दिव्य दृष्टि, जो कि हावी होने की प्रवृत्ति के मनोवैज्ञानिक प्रभाव को समझता था, ने आश्चर्यजनक कार्य किया। अलेक्ज़ेडर, जो अपनी शक्तियों के प्रति आश्वस्त था, ने चाहा कि उसके समस्त राज्य में उसे ईश्वर के समान माना और पूजा जाए। मिश्रवासियों ने सबसे पहले उसकी प्रभुता मानी। उसके बाद, ग्रीक, परसियनों और अन्य विजित देशों ने भी माना।

हावी होने की प्रवृत्ति की परम्परा रोमन शासकों में ज्यादा दिखाई देती है। वास्तव में, वे अत्यन्त हठीले और शक्तिशाली थे। लेकिन वे देवत्व की बीमारी से ग्रसित मिश्र में होने के कारण शक्ति हीन कर दिए गए, जहाँ कि फरोह को ईश्वर का अवतार समझा जाता था। इसने रोमन सीनेट को भी प्रभावित किया और उसने भी दैवीकरण की परम्परा को लागू कर दिया जिसके अनुसार एक मनुष्य को ईश्वर घोषित कर दिया जाता है। इतना ही नहीं प्रत्येक सम्राट की मृत्यु के बाद, न केवल भव्य अन्तिम संस्कार किया जाता था, बल्कि उसकी स्मृति में एक राष्ट्रीय पैन्थियोन बनाया जाता थी जिसकी पवित्रता रोमनों को मानना अनिवार्य होती था जैसाकि आज उनका जीज़स क्राइस्ट में विश्वास है।

आखिर मनुष्य दैवत्व का लबादा क्यों ओढ़ना चाहता है? उसके दो मुख्य कारण हैं। पहली तो दूसरों पर हावी होने की चाह जो कि हावी होने वाले व्यक्ति को अपने को सबसे महान व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करने के लिए विचलित करती रहती है। क्योंकि ईश्वर सबसे शक्तिशाली के रूप में विख्यात है, इसलिए हावी होने वाला चाहता है कि उसे भी किसी प्रकार से ईश्वर के समान समझा जाए। दूसरे हावी होने की चाह रखने वाले व्यक्ति की मानसिकता के विरुद्ध, साधारण व्यक्ति में स्वतंत्र चिन्तन की भावना होती है। वह अपनी जिन्दगी अपने ढंग से जीना चाहता है जो कि स्वतंत्र चिन्तन तथा मानव अधिकारों की प्राप्ति के बिना सम्भव नहीं है। इस प्रकार *मनुष्य स्वतंत्र रहने के लिए पैदा हुआ* है, मगर इसे हावी रहने वाला व्यक्ति नहीं चाहता है, उसी प्रकार जैसे कि कुत्ता बिल्ली को नफ़रत करता है, और बिल्ली चूहों को। ऐसा इसलिए होता है कि यदि लोग अपनी स्वतंत्रता बनाए रख सकेंगे तो हावी होने की चाह रखने वाला व्यक्ति अपनी मनमानी उस पर नहीं लाद सकेगा। हावीपन का सीधा सा अर्थ है दूसरों के अधिकारों को कम करके अपनी अधिकाधिक मर्जी चलाना। इस लक्ष्य की पूर्ति करने का एक तरीका तो पाशविक

शक्ति द्वारा है जैसे कि सामूहिक हत्या और इमारतों का विध्वंस करना। लेकिन यह तरीका थोड़े समय तक ही चल पाता है क्योंकि आदमी की आज़ादी की चाह उस अत्याचारी को रोकने को विवश करती है। इसलिए हावी होने वाले व्यक्ति को कोई अन्य शोभनीय साधन ढूंढ़ने पड़ते हैं जो कि भले ही ओछे हों, मगर ऊपर से पवित्र दिखाई दें, और उनकी दिमाग बहकाने की क्षमता मशाल की तरह आकर्षक व प्रभावकारी होनी चाहिए। पतंगों को मशाल का आकर्षण इतना जबर्दस्त होता है कि वे बिना किसी बाहरी दबाव के स्वयं उसमें जलने को लालायित हो जाते हैं।

मनुष्य की भी यही मानसिक प्रक्रिया है और यही वह तरीका है कि जिससे कोई शासक मनुष्य की मानसिक भावनाओं को उभारता है, जिसमें भय और आकर्षण दोनों मिले होते हैं। यह आमतौर पर देखा जाता है कि मनुष्य जो कुछ भी करता है, वह या तो भय के कारण या कुछ पाने के लिए करता है। ऐसा विशेष कर स्वर्ग और नरक पाने के विषय में तो बिल्कुल सच है। एक मनुष्य किसी मत को इसलिए मानता है क्योंकि वह नरक से डरता है, और साथ ही वह स्वर्ग भी जाना चाहता है जो कि उसके लिए सुखद प्राप्ति है। यही वह विचार है जो कि भावनात्मक आवेशों को अधिक उभारता है हालांकि यह बुद्धि को कम उचित लगता है। फिर भी भय, जो कि मनुष्य के व्यक्तित्व के मूल तत्वों में से एक है, नैतिकता का केन्द्र बिन्दु है। यह न केवल मनुष्य के कार्यकलापों को रोकता है, बल्कि यह उसके आचरणों का मार्ग दर्शक तत्व है। फिर भी, जब यह असंगत हो जाता है तो यह विवेक का सबसे बड़ा बाधक बन जाता है, और इस प्रकार भय मनुष्य के आचरण का एक विनाशकारी व बिदलनकारी आधार बन जाता है।

पुनः भय, आदर और समर्पण दोनों का स्रोत होता है। इसलिए हावीपन सिद्ध करने का सबसे अच्छा तरीका मनुष्य में भय की भावना उभारने के द्वारा है जो कि मनुष्य के धार्मिक मत और व्यवहार का एक अभिन्न अंग है। इस प्रकार का भय उस पतली पहाड़ी सरिता की तरह है जिसे हर समय पिघले हुए बर्फ का पानी मिलता रहता है, जिसके कारण वह सालों-साल बहती रहती है, जबकि पाशविक शक्ति से उत्पन्न भय मौसमी तेज वर्षा के समान होता है जिससे सैलाव तो फौरन आ जाता है, लेकिन नदी कुछ समय बाद सूख भी जाती है। इस प्रकार *सांसारिक हावीपन केवल पाशविक शक्ति द्वारा बहुत समय तक बनाए नहीं रखा जा सकता है। इसमें आध्यात्मिक पवित्रता का गठबन्धन इस तरह कर देना चाहिए कि लोग उससे धार्मिक आदर के साथ भयभीत होना सीखें, और बिना किसी बाहरी दबाव के स्वतः मानें।*

आध्यात्मिक हावीपन

शासक वर्ग के लोगों ने भय के महत्व को माना है और बड़ी चतुराई के साथ इसका प्रयोग किया है। इस बात के आधार पर हम दूसरे प्रकार के हावीपन पर विचार करेंगे जिसे मैंने पीछे आध्यात्मिक उत्तराधिकारिता कहा है।

आध्यात्मिक हावीपन वास्तव में आध्यात्मिक उत्तराधिकारिता से जुड़ा होता है। वह सांसारिक हावीपन व उससे जुड़ी सभी बातों को पाने का साधन है। यदि इसमें थोड़ा-सा दैवत्व जोड़ दिया जाए तो यह आध्यात्मिकता हो जाती है यानी हावी होने व राज्य करने वाला व्यक्ति इस आधार पर लोगों को श्रद्धापूर्वक आत्मसमर्पण की बात कहे कि वह परमेश्वर का पुत्र व उसका दूत अथवा ईश्वर का अवतार हो जाता है। इस प्रकार वह अपने को दैवी पुरुष के रूप में प्रस्तुत करता है जिससे वह अन्य लोगों से ऊपर हो जाता है। ऐसे लोग जिनका उद्देश्य इस प्रकार की घोषणाओं से पूरा होता है, वे उसका समर्थन करते हैं। एक बार जब लगातार मन गढ़न्त कहानियों के दुष्प्रचार, विश्वसनीयता तथा आतंकवाद आदि से किसी प्रकार देवत्व स्थापित हो जाता है तो उसका हावीपन लोगों को इतना ही लुभावना और आकर्षक हो जाता है जैसा कि पतंगों को जलती हुई मशाल। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। इस संदर्भ में मैं मिश्र की परम्परा का उदाहरण देना चाहूँगा जो कि इस प्रकार के विवेचन के लिए उचित है।

प्राचीन मिश्र में, फारोह (राजा) आकाशी देवता, होरस, और री, अमोन अथवा अरोन आदि नामों से विख्यात सूर्यदेवता के समान माना जाता था। यही कारण है कि फारोह को री, अरोन और होरस आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। विद्वानों का मत है कि उसने इन अलंकारों को इसलिए स्वीकार नहीं किया कि उनका विभिन्न देवताओं से सम्बंध था, बल्कि इसलिए देवी समझे जाने वाले सभी देवताओं का अवतार था। इस प्रकार वह अपने अधिकार से स्वयं ईश्वरीय अवतार था। इस विश्वास ने एक प्रभावी शाही मिश्रवाद को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप ईश्वरीय साम्राज्य के सिद्धान्त का उदय हुआ जो दो पीढ़ियों तक चला। इसका अर्थ यह हुआ कि जब तक एक फरोह राजा जिन्दा रहा उसने राजा होरस के रूप में राज्य किया। लेकिन उसकी मौत के बाद, वह मृतकों का राजा, ओसीरस हो गया। क्योंकि सभी मिश्रवासियों का मनुष्यों के समान निधन हुआ, अतः उन्होंने अपने फारोह राजा का विशेष सम्मान दिया जो कि भावी-दुनिया में भी उनके शासक राजा हुए। देखिए वह कितनी आश्चर्यजनक शाही क्रियाविधि थी जिसके द्वारा लोग अपने राजा का आज्ञा पालन के साथ पूजा भी करते रहे। इससे वहाँ यह परम्परा जन्मी कि फारोह राजा को ईश्वर की प्रति मूर्ति माना जाए, और ऐसा विश्वास किया

जाता था कि ईश्वर ने उसे "पृथ्वी पर मेरी जीवित प्रति मूर्त्ति" कहकर सम्बोधित किया।

फरोह के इस दैवी सम्प्रदाय को उत्सवों द्वारा और प्रचारित किया गया जिसमें बलि, भोजन, मदिरापान, नाटक मंचन, यौन सम्पर्क और सभी प्रकार के मनोरंजन सम्मिलित थे हालांकि उनका स्वरूप ईश्वरीय रखा गया। एक तरफ जहाँ फरोह की पूजा को भय बनाया गया वहीं उसकी पूजा मेले के मनोरंजन आदि का मिलना एक राजकीय प्रसाद माना गया। विद्वानों की खोज का परिणाम है कि इन मनोरंजक मिलनोत्सव की भावना, बाद के हैलेनेस्टिक यानी ग्रीक-रोम आदि के रहस्य वादी और मोक्षकारी रिलीजनों, जिसमें यहूदीमत, इस्लाम और ईसाइयत आदि सेमीटीय रिलीजन भी सम्मिलित हैं, का आधार बन गए। फरोह एक मानवीय रूप में, ईश्वर की जीवित प्रतिमूर्ति होने के अलावा ईश्वर का सेवक भी माना जाता था, जिसका मुख्य काम पृथ्वी पर ईश्वरीय कार्य करना का भी था। इसके फलस्वरूप राजत्व एक संस्था में बदल गई जिसे कि दैवी वायसराय का पद कहा जा सकता है। अरेबिया प्रायद्वीप में इसे विशेष प्रमुखता मिली।

यह बात मेसोपोटामिया के इतिहास में साफ़ दिखाई देती है। इसके सभी साम्राज्यों जैसे सुमेर, बैवीलोन और असीरिया, में इस सिद्धान्त का प्रचलन दिखाई देता है। चाहे यह नगार, या देश हो, इसका अध्यक्ष ईश्वर ही होता है, लेकिन इसका प्रशासक 'ईश्वर का विनम्र' वाइसराय सेवक होता है जिसका कार्य ईश्वरीय इच्छा का पालन करना होता है हालांकि, राजा की मुख्य भूमिका ईश्वर और मनुष्य के बीच मध्यस्थता करना होता था।

मोज़िज ने, जैसे ही अपने लोगों को मिश्र से निकाल कर बाहर लाया उसने इस सिद्धान्त को विशेष बल देकर अपनाया। यहूदियों ने साक्षात् परमेश्वर फरोह के राज्य में अनेक कष्ट उठाए थे, इसलिए उन्होंने इस प्रकार के राजा की परिकल्पना को सहन नहीं किया था। तब मोज़िज ने एक अदृश्य ईश्वर की अवधारणा दी जिसके अनुसार साधारण जनता ईश्वर से सीधे सम्पर्क नहीं कर सकती थी, लेकिन उसके प्रतिनिधि या वायसराय-मोज़ेज के माध्यम से उससे सम्पर्क करना 'सम्भव' था।

पवित्रता के इस प्रतिनिधिवादी लबादे को जिसे मनुष्य ने शताब्दियों से सहन किया है, पाशुविक शक्ति की अपेक्षा हावी होने का अधिक प्रभावकारी साधन सिद्ध हुआ है। *इस आध्यात्मिक प्रतिनिधि का ही दूसरा नाम 'पैगम्बर'* है। क्योंकि ईश्वर उसके ही माध्यम से बातचीत व उपदेश करता है और उसके ही माध्यम से सम्पर्क किया जा सकता है। ऐसे में पैगम्बर के शब्दों को ही ईश्वर के शब्द मान लिए गए, और कुछ समय के बाद उसके अनुयायियों ने उसे ही ईश्वर के समान पूजना प्रारम्भ कर दिया।

हावी होने की चाह की सीमा को इस बात से भी समझा जा सकता है कि जो मनुष्य को सीधे-उल्टे किसी भी प्रकार से दैवत्व पाने को प्रेरित करती हैं कि उसे ईश्वर की भांति पूजा जाए। *लेकिन सेमीटीय परम्परा में, एक पैगम्बर ईश्वर का सेवक होता है, जो कि ईश्वर और मनुष्य के बीच मध्यस्थता करता है और क्योंकि ईश्वर स्वयं केवल पैगम्बर के माध्यम से प्रगट होता है, अत: वह ईश्वर से भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है। यही कारण है कि यदि तुम पैगम्बर में विश्वास नहीं करते हो, तो तुम्हारा ईश्वर में आस्था और तुम्हारे समस्त शुभ कर्म भी व्यर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार एक पैगम्बर ईश्वर से भी ऊंची श्रेणी का होना प्रारम्भ हो जाता है। हालांकि पैगम्बर अपने को ईश्वर का सेवक कहता हैं, मगर वास्तव में यह ईश्वर ही है जो कि पैगम्बर से निम्न श्रेणी का हो जाता है। यही सेमीटीय परम्परा है जो कि रिवीलेशन या खुदाई इलहाम की सच्चाई को उजागर करती है और जो कि व्यवहार में मनुष्य के ऊपर हावी होने का आध्यात्मिक तरीका है। यह हावी होने की चाह की तीव्रता और गम्भीरता को प्रगट करता है जो कि मनुष्य को रिवीलेशन या ईश्वरीय आविर्भाव के माध्यम से ईश्वर को पाने को प्रेरित करता है। वह भी सिर्फ इसलिए कि मानव जाति उससे प्रेम करे, उसे पूजे और उसकी आज्ञाओं का पालन करे।*

सांसारिक और आध्यात्मिक हावीपन में अन्तर यह है कि सांसारिक हावीपन तो हावीपन चाहनेवाले व्यक्ति जैसे राजा आदि के मरने के बाद समाप्त हो जाता है, लेकिन आध्यात्मिक हावीपन चाहने वाले व्यक्ति के मरने के बाद भी समाप्त नहीं होता है और जो क़ब्र से भी आदेशित करता है तथा अपनी आज्ञाओं का पालन चाहता है। हावीपन चाहने की अदम्य भावना इससे और भी समझी जा सकती है कि जब पैगम्बर घोषणा करता है कि उसके बाद कोई अन्य पैगम्बर नहीं होंगे। स्तुतीकरण की यह अदम्य आकांक्षा पूजा का सार है जो कि निम्नतम श्रेणी की यातना है क्योंकि इसमें भक्त को अपने पूर्ण समर्पण की अभिव्यक्ति तथा आत्म-हननकारी कर्मकाण्डों के माध्यम से अपने को अपमानित करने की आवश्यकता होती है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए खुदाई इलहाम सबसे प्रभावी तरीका है क्योंकि खुदाई इलहाम करने वाला (पैगम्बर) घोषणा करता है कि वह इस मामले में कुछ नहीं करता है। वह तो यही दावा करता है कि वह वही करता है जो कि अल्लाह उससे करने को कहता है और उस परमेश्वर का सेवक होने के नाते, उसकी आज्ञाओं का पालन करने के अलावा उसके लिए अन्य कोई चारा नहीं है।

मगर सच्चाई इसके ठीक विपरीत है। यह पैगम्बर ही है जो स्वयं पूजा जाना चाहता है। पैगम्बर के लिए ईश्वर तो बहाना मात्र है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए खुदाई इलहाम एक प्रभावी माध्यम है।

यह खुदाई इलहाम क्या है?

इस खुदाई इलहाम को दैवी मार्ग दर्शन भी कहा जाता है। वास्तव में लेकिन यह आडम्बर का चौकाने वाला जाल है जिसे कि मानव मस्तिष्क बुन सकता है। *निसंदेह यह ईश्वर का सबसे बड़ा अपमान है जैसे :*

(1) कुरान के दूसरे सूरा में आदम की नाटकीय कहानी बतलाई जाती है जिसने अल्लाह के हुक्म का विरोध किया था क्योंकि वह उन्हें अपनी स्वतंत्र इच्छाओं के आदेशों के विरुद्ध पाता है। यह इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य न तो अल्लाह का परामर्श पसन्द करता है, और न उसे अल्लाह के मार्ग दर्शन की आवश्यकता है। जैसे ही आदम और उसकी पत्नी ईव़ को, ईडन के बाग निकाला गया, तो अल्लाह कहता है :

''यदि तुम्हारे पास मेरी ओर से कोई मार्ग दर्शन पहुंए : तो जो लोग मेरे मार्ग-दर्शन का अनुसरण करेंगे, तो उनके लिए कोई न भय होगा और न वे दुखी होंगे।'' (2 : 38, पृ. 132)

अल्लाह भलीभांति जानता है कि आदम ने उसके मार्ग दर्शन को ठुकरा दिया था, इसके बावजूद कि उसे ईडन के बाग में ठहरने का क्या पुरस्कार मिलेगा, जहाँ कि कोई काम, कष्ट और मृत्यु नहीं होगी और जिन्दगी के ऐशो-आराम की सभी चीजें कहने मात्र से ही मिल जाएंगी। इस पर भी अल्लाह अपने सन्देशवाहकों यानी पैगम्बरों द्वारा मानव जाति को मार्ग दर्शन भेजने पर बल देता है। *यह तो परमेश्वर का सरासर अपमान है क्योंकि इससे साफ़ पता चलता है कि उसे अपने स्वाभिमान की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं है। मनुष्य ने उसकी कठोरता से बेइज्जती की, उसे फटकारा, फिर भी वह बेतावी से मार्ग दर्शक भेजना चाहता है जो कि पूरी तरह से बेकार सिद्ध हो चुके हैं। क्या अल्लाह इतना अज्ञानी और बेशरम है?*

(2) उपरोक्त संदर्भ से यह बात दिन की तरह बिल्कुल स्पष्ट है कि अल्लाह आदम के विरोध को नफ़रत करता है। इसीलिए, उसे एक वफ़ादार आदम की रचना की जरूरत पड़ी होगी। मार्ग दर्शन (पैगम्बरपन) की अवधारणा से पता चलता है कि यह अल्लाह की, सृष्टिकर्त्ता के रूप में, अपनी कमियों को सुधारने का प्रयास है। इस प्रकार खुदाई इलहाम परमेश्वर की अपनी अपूर्णता का पूरक है। लेकिन पैगम्बर का प्रयास सराहनीय है जो कि अल्लाह की कमियों को दूर करने वाला है।

(3) यदि यह सृष्टि एक ईश्वरीय रचना है तो इसके सृष्टिकर्त्ता को *पूर्ण* ही होना चाहिए। मगर पैगम्बर तो एक मनुष्य है, इसलिए वह अपूर्ण है। भला *एक अपूर्ण व विनाशशील व्यक्ति, पूर्ण सृष्टिकर्त्ता का प्रतिनिधि कैसे हो सकता है?* और

अल्लाह स्वयं पैगम्बर पर निर्भर रहता है जो अपूर्ण है, अत: क्या वह मनुष्य से भी गया बीता है ?

यहाँ मुझे उन सभी तर्कों को दुहराने की आवश्यकता नहीं है जो मैंने खुदाई 'इलहाम' के खोखलेपन को दिखाने के लिए अपनी "एटर्निटी" और "डिसेप्शन आफ फेथ" नामक पुस्तकों में दिए हैं। यह तो मध्यपूर्व के देशों की राजनैतिक परम्परा रही है कि जो किसी शासक को ईश्वर के नाम पर राज्य करने की अनुमति देता है। ऐसा परमेश्वर कोई वास्तविकता न होकर केवल एक चतुराई भरी कल्पना है जिसमें एक पैगम्बर यह घोषणा करता है कि परमेश्वर असली मालिक है वह स्वयं तो एक विनम्र सेवक है। इस प्रकार वह अपने आदेशों को एक अलौकिक रंग की हवा देता है ताकि लोगों को मूर्ख और दब्बू बनाकर उन पर अपनी तानाशाही थोपी जा सके। इस प्रकार की अप्रत्यक्ष सरकार द्वारा वह ईश्वर के नाम पर जो चाहता है, सब कुछ कर लेने का अधिकारी हो जाता है क्योंकि उसके सभी कार्यकलाप ईश्वर की आज्ञा समझी जाती है। फिर भी वह यह दावा करता है कि उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं है। वह तो अल्लाह की आज्ञा के अनुसार काम करता है। इस प्रकार जो कुछ भी उसकी प्रजा के साथ होता है, उसमें वह दोष रहित रहता है। कितना चमत्कारी है यह खुदाई इलहाम! यहाँ तक कि मैचियावैली नामक राजनीतिज्ञ भी इस मध्यपूर्वी राजनैतिक चिन्तन में बौना दिखाई देता है।

इस राजनैतिक षड्यंत्र का केन्द्र बिन्दु, जो कि पैगम्बरपन कहलाता है, यह है कि ईश्वर लोगों पर दया करने के उद्देश्य से उनके लिए एक मार्ग दर्शक भेजता है ताकि वे नरक की यातनाओं से बच सकें, और स्वर्ग के अधिकारी हो सकें। दूसरा विचारणीय पहलू यह है कि सृष्टि से भी पहले कुछ आत्माएं पैगम्बरों के रूप में चुनी गई थीं। देखिए कुरान :

"और याद करो जब 'नबियों' (द्वारा उनके अनुयायियों) से वचन लिया कि जो कुछ मैंने तुम्हें 'किताब' और 'हिकमत' (तत्त्व दर्शिता) प्रदान की तो फिर तुम्हारे पास एक 'रसूल' उसकी 'तसदीक' करता हुआ आएगा जो तुम्हारे पास मौजूद है, तो तुम उस पर 'ईमान' लाना और उसकी सहायता करना। पूछा "क्या तुमने इक़रार किया, और इसमें मेरी ओर से डाली हुई भारी जिम्मेदारी तुमने उठाई?" उन्होंने कहा, "हमने इक़रार किया" कहा तो गवाह रहो और मैं भी तुम्हारे साथ गवाहों में से हूँ।" (3 : 81, पृ. 198)

संक्षेप में, इन आयतों का अर्थ है कि अल्लाह ने पैगम्बरों की आत्माओं की एक सभा बुलाई (सृष्टि से पहले) और उनसे पूरी तरह माननेवाला वायदा लिया कि वे सब यह घोषणा करेंगे कि मुहम्मद सबसे बड़ा और आखिरी पैगम्बर है और सुनिश्चित रूप से अपने अनुयायियों से कहेंगे कि वे सब उसके धर्म में धर्मान्तरित

हो जाएं जो कि परमेश्वर का केवल सच्चा धर्म है। अल्लाह यहाँ इस बात पर भी बल देता है कि सभी पैगम्बरों को सभी मार्गदर्शक सिद्धान्त बता दिए गए हैं जो कि मार्ग दर्शन की पुस्तक-कुरान में दिए गए हैं।

यह तो केवल धर्मान्तरण बढ़ाने का मुहम्मदीय तरीका है। भला सृष्टि से पहले पैगम्बरों की कोई सभा कैसे हो सकती थी? जैसाकि मैंने पहले कहा है कि स्वयं कुरान के अनुसार, मुहम्मद साहब खुद ही सच्चाई से परिचित नहीं थे और वे चालीस वर्ष की उम्र तक कुरान के बारे में कुछ भी नहीं जानते थे इसके बाद ही ''वे जिब्रील के माध्यम से पैगम्बर बनाए गए जो उनके लिए खुदाई इलहाम लेकर आया।'' इन परिस्थितियों में भला अल्लाह मुहम्मद को सबसे बड़ा और आख़िरी पैगम्बर कैसे घोषित कर सका होगा जबकि उसके जन्म के चार दशकों तक भी वे पैगम्बर नहीं माने गए थे? शायद, इन आयतों का अधिक बुद्धिमानी का यही अर्थ होगा कि मुहम्मद साहब कभी पैगम्बर थे ही नहीं क्योंकि उपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि सृष्टि से पहले बुलाई गई पैगम्बरों की सभा में, मुहम्मद को नहीं बुलाया गया था जिसमें ये सब ''पैगम्बर'' बुलाए गए थे।

मुहम्मद के पैगम्बरपन का आधार कुरान ही है जो कि मानव जाति के मार्ग दर्शन का स्रोत है। लेकिन कुरान की यह निम्नलिखित आयत इस विषय में सच सिद्ध नहीं होती है। ''कहो (मुहम्मद!) : ओ गैर-ईमानवालो! तुम्हें तुम्हारा 'दीन', और मुझे मेरा 'दीन' (109 : 6, पृ. 1207)

यहाँ यह बिल्कुल साफ़ कर दिया गया है कि अल्लाह ने मुहम्मद को किसी **'निश्चित मिशन'** के लिए नहीं भेजा था क्योंकि इन आयतों के अनुसार, गैर-मुस्लिम अपना 'दीन' मानें जबकि मुहम्मद और उसके अनुयायी अपने 'दीन' का पालन करेंगे। *इस प्रकार मुहम्मद के पैगम्बरपन घोषित किए जाने के समय तक उसके पास न कोई ''दैवी आचार' मार्गदर्शिका थी और न कोई 'सच्चाई' को प्रचारित करने की रूप रेखा। इन सभी बातो की जैसे ही वे जीवन में आगे बढ़े, परिस्थितियों के अनुसार उनकी जररूत हुई थी।* कुछ प्रमाण आप स्वयं देखिए :

(i) (ओ मुहम्मद!) 'उन्हें राह पर लाना तुम्हारे ज़िम्मे नहीं है बल्कि अल्लाह ही जिसे चाहता है राह दिखाता है' (2 : 272, पृ. 176)

(ii) (ओ मुहम्मद) तुम तो केवल एक सावधान करने वाले हो और अल्लाह हर एक चीज़ का संरक्षक है। (11 : 2, पृ. 416)

(iii) तुम्हारा ''रब' तुम्हें भली-भांति जानता है। वह चाहे तो तुम पर दया करे और चाहे तो तुम्हें यातना दे। और (हे नबी!) हमने तुम्हें उन पर कोई हवालदार बना कर नहीं भेजा है'' (17 : 54, पृ. 514)

यहाँ पाठक साफ़ देख सकते हैं कि मुहम्मद को किसी मार्ग दर्शन से कोई

सम्बंध नहीं थी। वास्तव में ये आयतें मुहम्मद को एक साधारण मनुष्य बताती है जो स्वयं मार्ग दर्शन के लिए अल्लाह की मर्जी पर निर्भर रहता है। ये उसका उस समय का दृष्टिकोण था, जब वह कमज़ोर और राजनैतिक दृष्टि से नगण्य था। तब उसने उपदेश दिया, "'दीन' (धर्म) के बारे में कोई जबरदस्ती नहीं" (2 : 256, पृ. 172)। लेकिन जब वह शक्तिशाली हो गया तो उसने अल्लाह के नाम पर घोषणा की कि "दीन" तो अल्लाह का 'इस्लाम' है (3 : 19, पृ. 188)। उसके बाद अन्य संदेश आए। जैसे :

"जो इस्लाम के सिवा कोई और 'दीन' चाहेगा तो वह कभी उससे कबूल नहीं किया जाएगा और वह 'आखिरत' में टोटा पाने वालों में से होगा।" (3 : 85 : पृ. 198)

क्योंकि अल्लाह को सिर्फ 'इस्लाम' ही एक मात्र 'दीन' स्वीकार्य है, तो उसने घोषणा की कि : *"वही है जिसने अपने 'रसूल' को मार्ग दर्शन और सच्चे 'दीन' (सत्य धर्म) के साथ भेजा, ताकि वह पूरे-के-पूरे 'दीन' पर प्रभुत्व प्रदान करे" (48 : 28, पृ. 945)*

क्योंकि अब इस्लाम को एक सच्चे 'दीन' के रूप में घोषणा कर दी गई है, तो उसे अन्य धर्मों से ऊपर उठाना आवश्यक हो गया। इसलिए जो इसे स्वीकार नहीं करेंगे तो उन्हें अल्लाह की तरफ से धिक्कारा जाएगा।

"निश्चय ही (भूमि पर) चलने वाले सभी से बुरे जीव अल्लाह की दृष्टि में वे लोग हैं जिन्होंने 'कुफ्र' किया, फिर वे 'ईमान' नहीं लाते" (8 : 55, पृ. 357)

यहाँ तक कि किसी के मां-बाप भी इसी श्रेणी में माने जाएंगे, यदि वे मुसलमान नहीं हैं। देखिए प्रमाण—

"हे ईमानलानेवालो! अपने बापों और अपने भाइयों को अपना मित्र न बनाओ, यदि वे 'ईमान' की अपेक्षा 'कुफ्र' को पसन्द करें। और तुममें से जो कोई उनसे मित्रता का नाता जोड़ेगा? तो ऐसे ही लोग ज़लिम होंगे" (9 : 23, पृ. 370)

सन्तानों के लिए मां-बाप प्यार और करुणा के सागर होते हैं। इसलिए जो धर्म ईमान के आधार पर उनके प्रति घृणा सिखाता है, तो वह मार्ग दर्शन का आधार नहीं हो सकता है, लेकिन गुमराही का स्रोत है। इस बात की पुष्टि इससे और भी अधिक हो जाती है कि जब अल्लाह अपना दृष्टिकोण ही पूरी तरह बदल लेता है और गैर-मुस्लिमों के बलात् धर्म परिवर्तन के लिए जिहाद के, क्रान्तिकारी सिद्धान्त की घोषणा करता है। देखिए प्रमाण :

"निस्संदेह अल्लाह ने 'ईमानवालों' से उनके प्राणों और इनके मालों को इसके बदले में खरीद लिया है कि उनके लिए 'जन्नत' है : वे अल्लाह के मार्ग में लड़ते हैं तो वे मारते भी हैं, और मारे भी जाते हैं। अल्लाह के जिम्मे ('जन्नतो का) एक पक्का वादा है, 'तौरात' और 'इंजील' और कुरान में" (9 : 111, पृ. 388)

एक मुसलमान अल्लाह का सिपाही होता है, जिसकी जिन्दगी को अल्लाह ने जन्नत देने के बदले में खरीद लिया है। जिहाद का अर्थ है गैर-मुसलमानों को लूटना और उनका कत्ल करना, यदि वे इस्लाम स्वीकारने के लिए कहने पर उसे स्वीकार न करें तो। इस्लाम में जिहाद को मार्ग दर्शन का सबसे अच्छा सिद्धान्त माना गया है। प्रार्थना, नैतिकता, दान, मुस्लिम समाज की सेवा आदि-आदि तो इस्लाम में मार्ग दर्शन के बहुत निचले किस्म के तरीके हैं। जिहाद अल्लाह के प्रति समर्पण का सबसे उत्तम प्रकार का नमूना है क्योंकि एक मुजाहिद (अल्लाह का सिपाही) को अल्लाह का हुक्म मानने में कोई झिझक या शर्म महसूस नहीं होती है। यहाँ तक कि उन्हें इसके लिए, हत्या, बलात्कार, लूट-पाट, अन्याय या दूसरों के मानव अधिकारों का हनन और लोगों की स्वतंत्रता ही क्यों न नष्ट करनी पड़े।

अल्लाह के मार्ग दर्शन मानने का लाभ होता है जन्नत, जो कि मुसलमानों के सपनों का अन्तिम लक्ष्य होता है। मुसलमानों की जन्नत पाने की चाह, गैर-मुसलमानों को धर्मान्तरित करने का इस्लामी प्रचार का मुख्य साधन है। इस आकर्षण के अलावा शायद ही कोई भी व्यक्ति इस 'रिलीजन' की और ध्यान देता हो। क्योंकि लोगों को जन्नत दिलवाना भी पैगम्बरपन का एक मुख्य अंग है तथा जन्नत की असलियत भी पैगम्बरपन के स्वरूप को प्रगट करती है। फिर तो हर कोई इस्लामी जन्नत के स्वरूप को जानना चाहेगा, जो कि इस प्रकार है—

जन्नत एक सबसे बड़ी और स्वादिष्ट गाजर है जो कि अरब निवासियों के सामने पहले कभी प्रस्तुत नहीं की गई थी। अरेबिया के पानी, पेड़ पौधों, चरागाहों, नदियों और बागीचों से रहित झुलसते रेगिस्तान की जरा जन्नत की तस्वीर से तुलना कीजिए। इससे भी बुरा यह कि अरेबिया में बहुत ज्यादा सुन्दर स्त्रियों नहीं थी, और यही कारण है कि अरबी लोग महिलाओं के दीवाने रहे। कुरान की निम्नलिखित आयतों पर ज़रा ध्यान दें जो कि इस्लाम की यौनाचार सम्बंधी अपील की ओर ध्यान आकर्षत करता हैं—

''उनके लिए जानी-बूझी रोज़ी है मेवे, और उनका सम्मान किया जाएगा नेमत भरी ''जन्नतों में, तख्तों पर आमने-सामने बैठे होंगे निथरी बहती (शराब के स्रोत) से मद्य पात्र भर-भर उनके बीच फिराये जाएंगे उज्ज्वल, पीने वालों के लिए आस्वाद, न उसमें कोई खराबी होगी, और न वे उससे मतवाले होंगे और उनके पास निगाहें बचाने वाली, सुन्दर आँखों वाली स्त्रियाँ होंगी, ऐसी (निर्मल) मानो छिपे हुए अण्डे हैं'' (37 : 41-49, पृ. 801)

जहाँ चीनी लोग चपटी छाती की स्त्रियां को पसन्द करते हैं, वहीं अरबी लोग उभरे स्तनों के शोकीन होते हैं। इसलिए कुरान कहता है—*''निस्संदेह डर रखने वालों के लिए सफलता है-बाग हैं और अंगूर और नवयुवतियां समान आयु वाली, और छलकता मद्य पात्र।''* (78 : 31-34, पृ. 1120)

जन्नत का आकर्षण तब और भी लुभावना हो जाता है जबकि शराब, जन्नतीय जीवन का अंग हो जाता है :

''निस्संदेह नेक लोग आनन्द में होंगे, ऊंची मसनदों पर से देख रहे होंगे, तुम्हें उनके चेहरों से आनन्द-सुख की ताज़गी का अनुभव हो जायेगा। उन्हें खालिस शराब पिलाई जा रही होगी, जो मुहरबन्द होगी, मुहर उसकी मुश्क की होगी—बढ़-चढ़कर अभिलाषा करने वालों को इसकी अभिलाषा करनी चाहिए—और वह 'तसनीम' से तैयार की गई होगी एक स्रोत है जिसमें से (अल्लाह के यहाँ) पहुँचने वाले पिएंगे।'' (83 : 22-28, पृ. 1139-1140) इस विचाराधीन विषय को और अच्छी तरह समझने के लिए मैं तिरमीज़ हदीस खण्ड दो (पृ. 35-40) के उद्धरण देना चाहूँगा जिसमें कि जन्नत में रहने वाली सदा-जवान अक्षत योनि कुमारी हूरों के बारे में विस्तार से दिया गया है, जो इस प्रकार है—

(1) एक हूरी अत्यन्त सुन्दर, जवान, और पारदर्शक शरीर वाली महिला है। उसके शरीर की मज्जा, अस्थि, मूंगे और मोतियों की भीतरी चमक के समान दिखाई देती है, वह सफ़ेद गिलास में गुलाबी शराब जैसी दिखाई देती है।

(2) वह सफेद रंग की है, और सामान्य स्त्रियों के शारीरिक दोषों, जैसे मासिक धर्म, मैनोपॉज़, पेशाब और व्यर्थ रसाब, गर्भधारण और अन्य प्रदूषणों से, मुक्त है।

(3) वह एक ऐसी महिला है जिसमें सदाकत, नज़ाकत, नफ़ासत और लचीली चितवनें हैं। वह अपने पति के अलावा किसी अन्य की ओर कभी नहीं देखती है और उसकी पत्नी होने में कृतज्ञ अनुभव करती है।

(4) हूरी एक युवा महिला है जो किसी से इर्ष्या और द्वेष नहीं करती है। इसके आलावा वह प्यार का मतलब समझती है और उसे प्रदर्शित करने की योग्यता रखती है।

(5) एक हूरी अमर यानी मौत के भय से मुक्त महिला है जिसकी आयु नहीं घटती है यानी सदा जवान बनी रहती है। वह कोमलता से बोलती है, और अपने पुरुष से ऊंचे स्वर में बात नहीं करती है। वह उससे सदैव सन्तुष्ट रहती है। ऐशो-आराम में पले होने के कारण वह खुद भी ऐशो-आराम पसन्द है।

(6) एक हूरी कमसिन उम्र की लड़की है जिसके स्तन बड़े उभरे हुए और गोल हैं और झुकने पर लटकते नहीं हैं। हूरें शानदार वातावरण के महलों में रहती हैं।

हूरी के उपरोक्त विवरण में ज़रा हदीस मिशक्त (खण्ड 3, पृ. 83-97) में दिए गए कथनों को भी जोड़ कर देखें —

(7) यदि कोई हूरी स्वर्ग में अपने निवास से नीचे पृथ्वी की ओर को देखती है तो बीच की समस्त दूरी रोशनी और खुशबू से भर जाएगी।

(8) एक हूरी का चेहरा एक शीशे से भी ज्यादा चमकदार है और कोई भी (शीशे की तरह) अपना चेहरा उसके गालों में देख सकता है। उसकी पिंडलियों की नसों को साफ़ देखा जा सकता है।

(9) हर एक आदमी जो भी जन्नत में दाखिल होगा, उसे बहत्तर हूरें दी जाएंगी चाहे उसकी मौत किसी भी उम्र में हुई हो; जब वह जन्नत में प्रवेश करेगा तो वह तीस वर्ष का युवा हो जाएगा और फिर उसकी उम्र और नहीं बढ़ेगी यानी सदैव तीस का ही जवान रहेगा।

(10) हदीस तिरमीज़ी (खण्ड दो, पृ. 138) कहती है कि "जन्नत में एक मनुष्य को एक सौ पुरुषों के बराबर काम शक्ति दी जाएगी।"

यहाँ विचारणीय यह है कि वे मनुष्य जो इतने कामी हैं, वे ऐशो-आराम व प्यार करने के अलावा कोई अन्य काम करना नहीं चाहेंगे। यही कारण है कि इस्लाम में जीवन का अन्तिम उद्देश्य कामवासनाओं की तृप्ति करना है। इस्लामी मोक्ष का असली मतलब यही है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उसमें थोड़ा और जोड़ दूं कि जन्नत का वातवरण कैसा है जो कि ईमानवालों को आकर्षित करता है : जन्नत इस प्रकार से बनाया गया है कि जिसमें सोने की हर एक ईंट के बाद एक ईंट चाँदी की लगाई गई है तथा इन ईंटों को जोड़ने के लिए चूने, गारे या सीमेंट, की जगह केसर का घोल लगाया गया है और कंकण की जगह हीरे और पन्नों को लगाया गया है। जो भी जन्नत में घुसेगा वह शोक मुक्त हो जाएगा और वह वहाँ सदैव रहेगा, सदैव जवान रहेगा और कभी नहीं मरेगा।

सामान्यतया कहा जाता है कि जन्नत में दूध, शहद और शराब की नदियां बहती रहती है। वहाँ का मौसम न अधिक गर्म होता है, न सर्द, बल्कि सुहावना बना रहता है। जन्नत के निवासियों को पंखदार घोड़े दिए जाएंगे जिन्हें पन्नों से गढ़ा गया है, वे घुड़सवार को जहाँ चाहेंगा, वहाँ ले जाएँगे। जन्नत के निवासी महलों और शानदार भवनों में रहेंगे, जो अत्यन्त कीमती और सुन्दर हीरों से सुसज्जित हैं और प्रत्येक आदमी की सेवा के लिए अस्सी हज़ार नौकर दिए जाएंगें।

जन्नत का उपरोक्त आकर्षक विवरण सुनकर कोई भी व्यक्ति इस्लाम की और आकर्षित हो सकता है। पैगम्बर मुहम्मद ने अपनी अपील को आम इंसान के लिए और भी लुभावना बनाने के लिए जन्नत और जहन्नम का पारस्परिक अन्तर भी दिखाया ताकि जहन्नम के दर्द का भय ओर जन्नत के आनन्दों का आकर्षण उनके दिलो-दिमाग पर असर कर सके। मगर यह सब दैवी या खुदाई तरीका नहीं हो सकता है, क्योंकि खुदा जो इतने ओछे तरीकों से अपने अनुयायी पाने को इतना लालायित है, अपनी उच्च मर्यादा व गरिमा से रहित है।

अन्यों द्वारा प्रशंसा पाने और पूजा जाने की इच्छा मनुष्य की स्वाभावक कमज़ोरी है और उसकी यह स्वाभाविक कमज़ोरी ही उसकी अपूर्णता का परिचायक है जिसकी पूर्ति वह अन्य लोगों के समर्पण, सेवाभाव एवं अधीनता में ढूंढ़ता है। यह हावी होने की चाह का केन्द्र बिन्दु है, जिसकी संतुष्टि विजित एवं अधीनस्थ लोगों द्वारा उसकी पूजा, प्रशंसा और प्रार्थनाओं से होती है ताकि उसके बड़प्पन, चमक-दमक और वैभव की पुष्टि हो सके जो कि वास्तविक नहीं है। क्योंकि मनुष्य एक मरणशील और आसानी से जीता जाने योग्य है, वह कभी भी बीमारी, दुर्घटना और मृत्यु को कारण परास्त किया जा सकता है। हावी होने की चाह तो केवल झूठा घमंड है और दूसरों को आश्वस्त करने का एक रूप है जो कि अपने साथियों की दृष्टि में किसी मनुष्य को स्वयं को ईश्वर होने का बहाना बनाने या उस तरह रहने का तरीका मात्र है। वास्तविक परमेश्वर तो इतना विशाल हृदय है कि उस पर मनुष्य की प्रार्थनाओं और अभिशापों का कोई प्रभाव नहीं होता है।

जन्नत के अत्यन्त भव्य एवं भोग-विलास भरे वर्णन के बाद, पैगम्बरीय जहन्नम की तस्वीर इस प्रकार की है—

कुरान में कहा गया है कि गैर-ईमानवालों,यानी वे जो अल्लाह और मुहम्मद दोनों को दैवी नहीं मानते हैं, की जगह नरक है (29 : 68, पृ. 711)। नरक अत्यन्त कष्टदायक और भयानक जगह है (25 : 65, पृ. 645)

(i) ''उसके आगे 'जहन्नम' है, और उसे कचलहू का पानी पिलाया जाएगा, जिसे वह घूंट-घूंट करके पिएगा और सरलतापूर्वक उसे नहीं उतार सकेगा और मृत्यु उस पर हर ओर से आती होगी परन्तु वह मेरगा नहीं, और उसके आगे एक कठिन यातना होगी।'' (14 : 16-17, पृ. 466) मगर ऐसा क्यों? इस का उत्तर स्वयं कुरान में देखिए—

''फिर उनमें से कोई तो उस पर 'ईमान' लाया और किसी ने उससे मुँह मोड़ लिया। और ऐसों के लिए 'जहन्नम' की दहकती हुई अग्नि काफ़ी है। जिन लोगों के हमारी 'आयतों' का इन्कार किया, उन्हें हम जल्द अग्नि में झोंक देंगे। जब उनकी खालें पक जाएंगीं तो हम उन्हें और दूसरी खालों से बदल देंगे ताकि वे यातना का रसास्वार्गदन कर लें।और जो लोग 'ईमान' लाए और अच्छे काम किए, उन्हें हम जल्द ही ऐसे बागों में दाखिल करेंगे जिन के नीचे नहरें बह रही होंगी जहाँ वे सदैव रहेंगे। उनके लिए पाक जोड़े होंगे—और उन्हें हम घनी छाँव में दाखिल करेंगे।'' (4 : 55-57, पृ. 231)

(ii) ''निश्चय ही हमने उस (ज़ाकूम वृक्ष) के ज़ालिमों के लिए यातना बना दिया है, वह एक वृक्ष है जो भड़कती हुई आग (जहन्नम) की तह से निकलता है। उसके गाभे ऐसे हैं जैसे 'शैतानों' के सिर तो वे (जहन्नम के लोग) उसे खाएंगे और

उसी से (अपने) पेट भरेंगे। फिर इसके ऊपर से पीने के लिए उन्हें खौलता हुआ पानी मिलेगा और इसके बाद उनकी वापिसी उसी भड़कती हुई आग (जहन्नम) की ओर होगी।" (37 : 63-68, पृ. 802-803)।

(iii) "फिर तुम हे गुमराहो, झुठलाने वालो! तुम अवश्य "जक्कूम" के वृक्ष से खाओगे, और उससे पेट भरोगे; फिर उस पर खोलता हुआ पानी पिओगे और पिओगे जैसे प्यास से व्याकुल ऊंट पिए" (56 : 51-55 पृ. 1002-1003)

जहन्नम का अन्य विवरण भी देखिए :

(*iv*) "अल्लाह की आग है भड़काई हुई, जो दिलों तक जा पहुँचती है। वे इसमें बन्द होंगे तथा लम्बे-लम्बे स्तम्भों में घेर दिए गए होंगे।" (104 : 6-9, पृ. 1197)

जाक्कूम वृक्ष का वर्णन सूरा 44 में भी दिया गया है : *"निश्चय ही 'ज़ाक्कूम' का वृक्ष गुनहगार (पापी व्यक्ति) का भोजन होगा! जैसे पिघली हुई धातु, वह पेटों में खोलता होगा जैसे पानी खोले।" (44 : 43-46 पृ. 907)।*

पुन: देखिए, *"तो जिन लोगों ने 'कुफ्र' किया, उनके लिए अग्नि के वस्त्र काटे जा चुके हैं; उनके सिरों पर खौलता हुआ पानी डाला जाएगा जिससे जो कुछ उनके पेटों में है वह और (उनकी) खातें गल जाएंगी और उनके लिए लोहे के गुर्ज़ (गदाएं) होंगे (जिनसे उनकी गत बनाई जाएगी)। जब कभी वे दुख के कारण उस 'जहन्नम' से निकलना चाहेंगे फिर उसी में लोटा दिए जाएंगे और (कहा जाएगा) चखो मज़ा जलने की यातना का।" (22 : 19-22, पृ. 592)*

पैगम्बर को विशेषता 'जन्नत' और 'जहन्नम' के परस्पर विरोधी वर्णनों में उस समय स्पष्ट दिखाई देते है जब वे स्वर्ग के आनन्दों की तुलना नरक के दुखों से साथ-साथ करते हैं। उदाहरण के लिए देखिए—

"जहन्नम" एक घात में है, सरकश लोगों का ठिकाना है जिसमें वे मुद्दत-पर-मुद्दत बिताते रहेंगे, न वहाँ किसी ठण्डक का आस्वादन करेंगे, और न किसी पीने की चीज का सिवाय खौलते पानी और पीप-रक्त के" (78 : 21-25 पृ. 1119)...."निस्संदेह डर रखने वालों के लिए सफलता है—बाग़ हैं, और अंगूर, और नवयुवतियां समान आयु वाली और छलकता मद्य-पात्र! वे वहाँ कोई बकवास नहीं सुनेंगे और न कोई झूठ।" (78 : 31-35, पृ. 1120)

मैं नहीं समझता कि यहाँ मुझे 'जहन्नम' के भयों को दिखाने के लिए हदीसों से और प्रमाण देने की आवश्यकता रह गई है।

फिर भी 'जन्नत' की चाह का आकर्षण कुरान का नीचे लिखी आयत को बिना बताए अधूरी ही रहेगा।

(*i*) "तो अल्लाह ने उन्हें उस दिन की आपत्ति से बचा लिया, और उन्हें

प्रफुल्लता और प्रसन्नता से सम्पन्न किया। और जो सब उन्होंने किया था उसके बदले में उन्हें 'जन्नत' और रेशमी कपड़े प्रदान किए। वे वहाँ ऊंची मसनदों पर तकिया लगाए हुए हैं, वहाँ न सूर्य की तपन देखते है और न कड़ाके जाड़ा। और वहाँ उन पर छाया पड़ रही है और उसके मेवे झुकाकर बिल्कुल वश में कर दिए गए हैं और उनके पास गर्दिश कर रहे हैं चाँदी के बरतन और आवखोरे बिल्कुल शीशे हो रहे हैं। शीशे चांदी के! जिन्हें ठीक-ठीक अन्दाज़े से रखा है और उन्हें वहाँ ऐसे मद्य का पान कराया जा रहा है जो 'जन्जीबील' (सौंठ) मिलाकर तैयार किया गया है। यह वहाँ का एक स्रोत है जिसका नाम 'सल्सबील' है। *और उनके पास ऐसे लड़के आ-जा रहे है जिनकी अवस्था सदा एक ही रहेगी, तुम उन्हें देखो, तो समझोगे बिखरे हुए मोती हैं......उन पर बारीक हरे रेशमी कपड़े है और दबीज़ रेशमी कपड़े भी। और चांदी के कगनों से आभूषित किए गए हैं और उन्हें उनके 'रब' ने स्वच्छ पेय पिलाया। यह तुम्हारा प्रतिफल है और तुम्हारी कोशिशों की कद्र की गई।" (76 : 11-22, पृ. 1110-1111)*

इन सदा बहारी नौ जवान लड़कों का वर्णन कुरान (52 : 23-24 पृ. 973) में इस प्रकार दिया हुआ है *"वे वहाँ आपस में प्याले छीन-झपट रहे हैं। उसमें न बेहूदगी है और न कोई गुनाह की बात और उनके पास उनके (सेवक) लड़के आ जा रहे हैं वे ऐसे (सुन्दर) हैं जैसे धराऊ (सुरक्षित) मोती।"*

उपरोक्त वर्णन से सुस्पष्ट है कि अत्यन्त सुन्दर कुंवारियों के अलावा जन्नत में लड़के भी होते हैं—

(*i*) वे कभी नहीं मरते हैं यानी उनकी उम्र बिल्कुल नहीं बढ़ती है।

(*ii*) वे इतने सुन्दर होते हैं कि वे 'बिखरे मोती' जैसे दिखाई देते हैं।

(*iii*) वे सिल्क के कपड़े पहनते हैं।

(*iv*) वे चांदी की ब्रेसलेटों से सुसज्जित होते है। इसके उपरोक्त अलावा कुरान (52 : 23) में साफ़ कहा गया है कि 'जन्नत' की जिन्दगी में "गुनाह (पाप) की बात नहीं" होती है। इसलिए, किसी ग़लत काम का कारण भी वहाँ नहीं होता है। जन्नत के निवासी जो कुछ भी करें सभी कुछ निर्विवाद है।

जब कभी भी मुस्लिम प्रचारकों से यह पूछा जाता है कि 'जन्नत' में लड़कों के होने का क्या उद्देश्य है? तो यह बताया जाता है कि वे सभी पैगम्बर के नौकर हैं। मगर आश्चर्य की बात तो यह है कि किसी नौकर के सदा जवान व मोती की तरह सुन्दर तथा ब्रोकेड़ों और ब्रेसलेटों से सुसज्जित होने की क्या ज़रूरत है? निश्चय ही कोई नौकर बूढ़ा, बदसूरत और अभद्र पोशाक में भी हो सकता है। इसका फैसला पाठकगण स्वयं ही कर लें।

प्रश्न यह है कि आखिर अल्लाह 'ईमानवालों' के लिए इतना लालायित क्यों

है ? वह मनुष्य को 'ज़न्नत' के सुखों को भोगने का लालच दिखाता है, और यदि मनुष्य उन प्रलोभनों में नहीं फँसता है, तो वह उसे नरक की भयानक यातनाओं का भय दिखाता है। इतने पर अल्लाह अपने को स्वतंत्र, सम्पूर्ण और निस्प्रह या गैर-लालची कहता है!

सच्चाई यह है कि अल्लाह, जिसने मनुष्य का पूर्ण समर्पण पाने के लिए 'जन्नत' और 'जहन्नम' यानी स्वर्ग और नरक बनाए हैं, अत्यन्त स्वार्थी है और इसलिए वह तीव्र इच्छाओं से प्रेरित है। कुरान इस बात की पुष्टि करती है।

''निस्संदेह तेरा 'रब' जो चाहे कर डाले'' (11 : 107, पृ. 431)

स्तुति सबसे निचले किस्म की चापलूसी है। अल्लाह, जिसकी सबसे बड़ी प्रसन्नता खुशामद पाने में है और जो इच्छाओं के वशीभूत है, दैवी नहीं हो सकता है। वह केवल एक कल्पना या मिथ मात्र है। इतने श्रेष्ठ आश्चर्यजनक ब्रह्माण्ड के सृष्टिकर्त्ता को मानवीय कल्पनाओं, भय और मतान्धता से नहीं नापा जा सकता है। क्योंकि पैगम्बरपन की अवधारणा इस प्रकार के अल्लाह का निरुपण करती है जिससे पैगम्बरपन स्वयं एक सच्चाई न होकर कल्पनामात्र रह जाती है।

जैसाकि हम पहले देख चुके हैं कि पैगम्बरपन ईश्वरीय सत्ता का एक अपमान है। यह इस बात को जानने को प्रेरित करता है कि आखिर पैगम्बरपन का उद्देश्य क्या है और कोई पैगम्बर वास्तव में चाहता क्या है ?

■■

अध्याय चार

पैगम्बर का उद्देश्य

पिछले अध्याय में हमने देखा कि पैगम्बर तो केवल सावधानकर्त्ता है। वान तो लोगों का संरक्षक है और न किसी का मार्ग दर्शन कर सकता है। यहाँ तक कि पैगम्बर मुहम्मद अल्लाह की महरवानी पर है क्योंकि यह उस परमेश्वर की मर्जी है कि वह मुहम्मद का मार्ग दर्शन करे या न करे। फिर भी मुसलमान पूरी तरह से मानते हैं कि मुहम्मद सबसे बड़ा पथ प्रदर्शक (हदी-ए-आज़म) है। यह तो एक विभिन्न ही रवैया है। कुरान कहता है—*"(ओ पैगम्बर!) तुम जिसे चाहो मार्ग पर नहीं ला सकते, परन्तु अल्लाह जिसे चाहता है मार्ग पर लाता है।" (28 : 56, पृ. 692)*

किसी के मार्ग दर्शन की चिन्ता मत करो। यहाँ तक कि मुहम्मद को किसी को हानि पहुंचाने का अधिकार भी नहीं दिया हुआ है। हदीस (बुखारी सं. 397 खं. 5, पृ. 272-273) साफ़-साफ़ कहती है कि "पैगम्बर मुहम्मद, साफ़वान बिन उमेया, सुहेलबिन अमर और अल-हरीथ बिन हिशाम को निन्दनीय शब्द बोलता था, इस पर निम्नलिखित आयत उतरी—

"तुम्हें (ओ मुहम्मद!) इस मामले में कोई अधिकार नहीं है—चाहे वह (अल्लाह) उन्हें क्षमा करे या उन्हें यातना में ग्रस्त करे क्योंकि वे ज़ालिम हैं।" (3 : 128, पृ. 204)

स्पष्ट है कि कुरान की असली परम्परा में *एक पैगम्बर का लोगों का मार्ग दर्शन करने से कोई सरोकर नहीं है, वह तो केवल एक चेतावनी देने वाला है जिसका कर्तव्य लोगों को केवल यह बतलाना है कि यदि वे उसकी नहीं सुनेंगे तो क्या परिणाम होगा।*

वास्तव में कुरान का मार्ग दर्शन से क्या मतलब है? पाठक इस सच्चाई को स्वयं देखें—

(i) "अल्लाह जिसे चाहता है, उसे सीधा मार्ग दिखा देता है।" (2 : 213, पृ. 161)

(ii) "अल्लाह 'काफ़िरों' को मार्ग नहीं दिखाता।" (2 : 264, पृ. 175)

यदि इन आयतों में कही गई बातों में सच्चाई है, तो क्या यह आश्चर्यजनक नहीं कि अल्लाह एक संदेशवाहक (पैगम्बर) के मार्फत कुरान को भेजता है। जो लोगों को चेतावनी देता है कि यदि वे इसमें विश्वास और तदनुसार आचरण नहीं करते हैं तो अल्लाह उन्हें 'जहन्नम' (जिसका वर्णन पीछे दिया गया है) में फेंक

देगा। क्या खुदाई इलहाम का उद्देश्य उपरोक्त यानी लोगों को सही मार्ग पर लाने के लिए नहीं है ? वास्तव में, अल्लाह ईमानवालों को पाने के लिए बेहद लालायित है, और जो उसे स्वीकार नहीं करते हैं। उन्हें मारने और बरबाद करने की अनुमति देता है—

'किताबवाले' जो न अल्लाह पर 'ईमान' लाते हैं और न 'अन्तिम दिन' पर, और न उसे 'हराम' करते है जिसे 'अल्लाह' और उसके 'रसूल' ने 'हराम' ठहराया है और न सच्चे 'दीन' को अपना 'दीन' बनाते हैं, उनसे लड़े। यहाँ तक कि वे अप्रतिष्ठित होकर अपने हाथ से ज़िज़िया देने लगे।'' (9 : 29, पृ. 372)

क्या अल्लाह लोगों के साथ खिलवाड़ कर रहा है ? ज़रा नीचे की आयत भी देखें—*''यदि अल्लाह चाहता तो सारे ही मनुष्यों को सीधे मार्ग पर लगा देता।'' (13 : 31, पृ. 460)*

इसका यह अर्थ हुआ कि सभी गलत परामर्श यानी अविश्वास, छलकपट, अत्याचार, यातनाऐं, अनैतिकताएं आदि, सभी अल्लाह की इच्छा के अंग है। यदि वह इन सबका कारण है, तो फिर वह पैगम्बरों और 'दैवी पुस्तकों' को क्यों भेजता है ? कृपया यह भी देखें—

''अल्लाह जिसे गुमराही में डाल दे, उसे कोई मार्ग दिखाने वाला नहीं है और जिसे अल्लाह मार्ग दिखाए। उसे कोई भटकाने वाला नहीं। क्या अल्लाह प्रभुत्वशाली और (अपकर्म का) बदला लेने वाला नहीं है ?'' (39 : 36-37, पृ. 836)

यहाँ यह साफ़-साफ़ कह दिया गया है कि अल्लाह जो मार्ग दर्शन करता है, वह गुमराह भी करता है और वह ऐसा यह दिखाने के लिए करता है कि वह सर्वशक्तिमान और सर्व प्रतिशोधी है। यह परमात्मापन की कैसी विचित्र अवधारणा है!

पुनः कुरान के अनुसार ईसाई, यहूदी, हिन्दू, सिक्ख, बौद्ध, नास्तिक आदि सभी 'बेईमानवाले' हैं। इसीलिए 'गुमराही' होने के कारण उनको नरक में भेज दिया जाएगा क्योंकि उनके अविश्वास का कारण अल्लाह है, अतः मार्ग दर्शन और गुमराह करने का काम उसके लिए एक खेल मात्र है। वह अल्लाह निश्चय ही मानव जाति का मज़ाक उड़ाने के लिए ऐसा करता है।

मानव जाति का अस्सी प्रतिशत अब भी 'गैर-मुस्लिम' हैं। इसलिए अल्लाह आज भी सुमार्गदर्शन की अपेक्षा गुमराह करने में ज्यादा व्यस्त है। इस बात को समझने के लिए नीचे की आयत को भी देखें—

''क्या तुमने नहीं देखा कि हमने इन 'काफ़िरों' पर 'शैतानों' को छोड़ रखा है जो इन्हें उकसाते रहते हैं ?'' (19 : 83, पृ. 553)

अब पाठक भली भाँति समझ गए होंगे कुरान के मार्ग दर्शन की अवधारणा

स्वयं में इतनी अन्त: विरोधी और भ्रम में डालने वाली है कि यह किसी भी विवेकशील इंसान को स्वीकार्य नहीं होगी। मार्ग दर्शन सीधा, सरल, प्रभावशाली, और विरोधाभासों से मुक्त होना चाहिए। सुस्पष्ट है कि कुरान का उद्देश्य कुछ और ही है। आखिर वह क्या है ? इसका रहस्य नीचे लिखी आयतों से खुल सकता है।

''निस्संदेह 'जिन लोगों' ने 'कुफ्र' किया है 'किताब वालों और मुश्रिकों में से वे 'जहन्नम' की आग में होंगे। जहाँ वे सदैव रहेंगे। यही लोग दुष्टतम जन हैं'' (98 : 6, पृ. 1184)

जैसाकि हम सभी जानते हैं कि यहूदी और ईसाई अपने को ईश्वरवादी होने का दावा करते हैं यानी वे एक परमेश्वर में विश्वास करते हैं। फिर भी कुरान ने उन्हें 'गैर-ईमानवाले' कहा है और उन्हें मूर्त्ति पूजकों (हिन्दू आदि) के साथ जोड़ दिया गया है। स्पष्ट है कि कुरान के अनुसार, केवल अल्लाह में विश्वास ही होना बेमानी एवं व्यर्थ है। इसीलिए, इस्लाम में पैगम्बर मुहम्मद मुख्य व्यक्तित्व है और अल्लाह सिर्फ एक ऊपरी आवरण है। अल्लाह को सर्वशक्तिमान के समान कहा गया है लेकिन अल्लाह में विश्वास करनेवाले किसी स्त्री/पुरुष को अपने को 'ईमानवाला' मानने का अधिकार नहीं है चाहे वह उसका कितना ही बड़ा भक्त क्यों न हो। वह तो उस स्त्री/पुरुष को नरक में फेंकने को विवश है जब तक कि वह स्त्री/पुरुष मुहम्मद में भी विश्वास नहीं करता हो। कितना आश्चर्य है कि मुसलमान मानता है कि :

''बा खुदा दीवाना बशद बा मुहम्मद होशियार''

यानी कोई ईश्वर के प्रति उदासीन हो सकता है, मगर उसे मुहम्मद के प्रति आदर भाव रखना चाहिए।

मैं इसकी पहले ही विवेचना कर चुका हूँ कि मनुष्य में दूसरों पर हावी होने की स्वाभाविक चाह होती है जो कि उसके व्यवहार को सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में उच्चतम पद व यश प्राप्त करने की ओर प्रेरित करता है। हमारे प्रधानमंत्री राष्ट्र अध्यक्ष, सम्राट, डिक्टेटर आदि इस चाह के साक्षात् प्रमाण हैं। उन सबमें एक बात यह होती है कि वे सभी अन्यों पर शासन करना चाहते हैं, लेकिन उनका अधिकार उनके जीवन पर्यन्त ही रहता है, वह मौत के बाद समाप्त हो जाता है। *इसके अलावा, कुछ थोड़े से ऐसे भी लोग हैं, जिनकी हावी होने की चाह सबसे अधिक और तीव्र होती है। उनमें कबर में पहुँचने के बाद भी शासन करने की चाह होती है। इस दुर्लभ वर्ग के सदस्य ''पैगम्बर'' और ''मसीहा'' कहलाते हैं। वे ईश्वर का प्रयोग अपनी निजी नैतिकता, बड़प्पन और दैवीपने की इच्छाओं व आकांक्षाओं को अन्य ही तरीकों द्वारा पूरा करते हैं। वे स्वयं को 'पैगम्बर' होने का बहाना करते हैं यानी 'स्वयं को 'ईश्वर का सेवक' कहते हैं, लेकिन वे सभी*

'ईश्वरीय' व दैवी शक्तियां, ईश्वर के नाम पर अपने पास रखते हैं और परमेश्वर को पृष्ठभूमि में धकेल देते हैं।

यह तो चौंका देने वाला तरीका है। जब हम इसका सावधानी से अध्ययन करते हैं, तो इसकी उत्पत्ति भारतीय मूल की मालूम पड़ती है। जब भारतीय ऋषियों ने ध्यानपूर्वक प्राकृतिक शक्तियों जैसे सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, दिन, रात, हवा, वर्षा, बिजली, आग आदि पर विचार किया तो वे इस नतीजे पर पहुँचे कि इन सभी भौतिक शक्तियों को बनाने वाली कोई दैवी उत्पत्ति शक्ति है। उस दैवी शक्ति को उन्होंने देवता या देवी कहा, और वे उसकी पूजा करने लगे। प्रकृति के ये साक्षात भौतिक पदार्थ, यानी बिजली जो कि दिखाई देती है, बादलों की गड़गड़ाहट जो कि सुनी जा सकती है, और हवा जो महसूस की जा सकता है, उनके देवी देवताओं के चिन्ह हो गए। आखिर में, निष्ठा के वशीभूत होकर उन्होंने उनकी मूर्त्तियां बनाई जो कि विभिन्न देवी-देवताओं के प्रतीक बन गए। क्योंकि प्रत्येक मूर्त्ति किसी-न-किसी भौतिक शक्ति की प्रतीक होती थी, इससे, दैवी शक्तियों का सामूहिक स्वरूप प्रगट न हो सका। हालांकि जिन मूर्त्तियां की वे पूजा करते थे, उनकी महिमा के बारे में वे आश्वस्त थे, उन्होंने अन्य लोगों के देवताओं की निन्दा नहीं की, अपने इस विश्वास के कारण, कि वे भी शक्तियां का प्रतिनिधित्व करने के कारण दैवी हैं। इसके कारण सर्वात्मवाद (पैंथिज्म) का जन्म हुआ यानी ऐसा सिद्धान्त जिसमें ईश्वर सकल विश्व का प्रतिरूप है जिसमें सभी देवताओं की पूजा की जाती है जो कि सभी मिलकर एक शाश्वत सत्य के प्रतीक का प्रतिनिधित्व करते हैं।

यह एक ऐतिहासिक प्रमाण है कि वर्ष 2000 बी.सी. में, बहु- देवतावाद का भारतीय सिद्धान्त मध्यपूर्वी देशों में पहुँचा जबकि कैसाइटों (और बाद के मित्तानीज़) ने, जो भारतीय देवताओं की पूजा करते थे, इन प्रदेशों को जीता। *पैगम्बरपन का सिद्धान्त भी भारतीय मूर्त्ति पूजा व्यवस्था से काफ़ी मिलता-जुलता है। मूर्ति, इसमें छिपी दैवी शक्ति या देवता, को समझने का एक प्रतीक अथवा भौतिक साधन है। हालांकि एक बुद्धिमान भक्त, मूर्ति के बहाने, बाहर के देवता को पूजता है, न कि स्वयं मूर्ति को, जबकि एक साधारण पूजक मूर्ति को ही अन्तिम लक्ष्य मान बैठता है, तो जिस देवत्व भाव की वह मूर्ति प्रतिनिधित्व करती है, वह भाव पूर्णतया अदृश्य हो जाता है।*

यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि जब कोई व्यक्ति अपने को पैगम्बर होने का दावा करता है तो वह सबके सामने स्वयं अपने को परमेश्वर की छाया, और परमेश्वर को वास्तविकता के रूप में प्रस्तुत करता है। लेकिन क्योंकि इसमें अन्यों पर हावी होने की तीव्र लालसा होती हैं, तो वह अत्यन्त उत्सुक हो जाता है और अपनी प्राथमिकताओं का क्रम बदल देता है और ऐसी कोशिश करता है कि लोग

छाया को ही वास्तविकता, और वास्तविकता को छाया समझें; और पैगम्बरपन का वास्तविक लक्ष्य लोगों द्वारा इस उल्टे क्रम को ही मनवाना होता है और ऐसा होना सम्भव हो जाता है क्योंकि जैसे मूर्ति पूजा में मूर्ति तो देखी जा सकती है लेकिन उसमें छिपा देवत्व दिखाई नहीं देता है। ठीक इसी प्रकार पैगम्बरपन में पैगम्बर तो दिखाई देता है, लेकिन परमेश्वर जिसका वह प्रतिनिधित्व करता है, वह देखा नहीं जा सकता है। इस प्रकार मूर्ति की तरह, पैगम्बर परमेश्वर का स्थान प्राप्त कर लेता है। हालांकि ऊपरी मन से वह इसका विरोध करता है और स्वयं को मनुष्य या परमेश्वर का सेवक कहता है। पैगम्बरपन का यह तरीका इतना प्रभावशाली है जिससे कि पैगम्बर की प्रतिष्ठा स्वयं परमेश्वर से भी बढ़-चढ़कर हो जाती है और जितना ही वह दैवी न होने का दम्भ करता है, उतना ही वह मनुष्य कम समझा जाता हैं।

इस उपरोक्त विवरण की दृष्टि से, आइए अब, पैगम्बरपन का उद्देश्य समझें।

प्रारम्भ में मुहम्मद साहब ने इस बात पर बल दिया कि वह पैगम्बर नहीं बनना चाहता है। ज़िब्रील के दर्शन से वह इतना भयभीत हो गया कि उसने आत्महत्या तक करने की कोशिश की। यह तो उसकी पत्नी खादिजा थी जिसने अपने चचेरे भाई वर्क बिन नौफल के माध्यम से उसे विश्वास दिलाया कि अल्लाह ने ही उसे पैगम्बर चुना है। इसके बाद उसने लोगों को विश्वास दिलाना प्रारम्भ किया कि वह तो अल्लाह का एक सेवक है जिसे उसके सन्देशों को आम जनता तक पहुंचाने के लिए नियुक्त किया गया है। सच्चाई को समझने के लिए कृपया कुरान की निम्नलिखित आयतों को भी देखें—

(i) "यदि तुम उस चीज़ के बारे में जो हमने (अल्लाह) अपने बन्दे पर उतारी है, सन्देह में हो, तो तुम उस जैसी एक 'सूरा' लाओ।" (2 : 23, पृ. 129)

(*ii*) पैगम्बर के नाशवान होने के कारण उसे अल्लाह के दण्ड और पुरस्कार भुगतने पड़ सकते है जैसे—

"तुम्हारा 'रब' तुम्हें भलीभांति जानता है। वह चाहे तो तुम पर दया करे, और चाहे तो तुम्हें यातना दे और (हे नबी) हमने तुझे उन पर हवालेदार बनाकर नहीं भेजा है।" (17 : 54, पृ. 514)

(*iii*) पैगम्बर को अल्लाह द्वारा चेतावनी दी जाती है : *"अल्लाह के साथ कोई दूसरा 'इलाह' (पूज्य) न गढ़ना, नहीं तो निन्दित और ठुकराया हुआ 'जहन्नम' में झोंक दिया जाएगा।" (17 : 39, पृ. 512)*

कुरान और हदीसों में काफ़ी प्रमाण मिलते हैं जो सिद्ध करते हैं कि पैगम्बर मुहम्मद, जिसे कि नाशवान, और अल्लाह का विनम्र सेवक होने का दावा किया जाता है, अल्लाह का सन्देश देने के लिए चुना गया था। लेकिन ऐसा तभी था, जब

वह कमजोर था। जैसे-जैसे वह राजनैतिक चतुराई और सैनिक प्रयासों द्वारा शक्तिशाली होने लगा, उसने अपनी तेवर बदलने शुरू कर दिए, जब तक कि उसने स्वयं को अल्लाह से बड़ा होने का दावेदार सिद्ध न कर दिया। ये हैं इसके प्रमाण—

(*i*) "प्रारम्भ में, कुरान अल्लाह की आज्ञा पालन पर अधिक बल देता था। लेकिन समय के साथ, मुहम्मद ने अपने को दैवी प्रतिष्ठा में सम्मिलित करने को उचित समझा" : *"कह दो : अल्लाह और उसके 'रसूल' (मुहम्मद) की आज्ञा का पालन करो।" (3 : 32, पृ. 190)*

(ii) "और अल्लाह और 'रसूल' का कहना मानो ताकि तुम पर दया की जाए।" (3 : 132, पृ. 205)

(*iii*) "अल्लाह का आदेश मानो और 'रसूल' का आदेश मानो" (4 : 59, पृ. 232)

(*iv*) जिसने रसूल का आदेश माना वास्तव में उसने अल्लाह का आदेश माना। (4 : 80, पृ. 235)

(*v*) रसूल का विरोध करने वालों का ठिकाना जहन्नम है (4 : 115, पृ. 242)

कृपया ध्यान दें कि वही मुहम्मद जो न वरदान दे सकता था, न अभिशाप, वही अब अल्लाह के साथ करुणा का सागर बन जाता है।

जैसे-जैसे पैगम्बर राजनैतिक दृष्टि से शक्तिशाली होता जाता है, वह अल्लाह के सह-अधिष्ठाता के समान आचरण करने लगता है क्योंकि इसके बाद अल्लाह जो कुछ भी करता है, वह मुहम्मद को भी उसमें शामिल कर लेता है :

"और न किसी 'ईमान' वाले पुरुष को और न किसी 'ईमान' वाली स्त्री को यह हक़ है कि जब अल्लाह ओर उसका रसूल किसी बात का फ़ैसला कर दे तो फिर उन्हें अपने मामले मे कोई अधिकार रहे और जो कोई अल्लाह और उसके 'रसूल' की अवज्ञा करे तो वह गुमराही में पड़ गया।" (33 : 36, पृ. 752)

अल्लाह-पैगम्बर सम्बंधों में चरमोत्कर्ष तब होता है जब मुहम्मद अपना रवैया बिल्कुल ही बदल लेता है, जिसके परिणामस्वरूप अल्लाह और उसके फरिश्ते स्वयं उसके पूजक बन जाते हैं। यह तो अत्यन्त ही चौकानेवाला है।

"निश्चय ही अल्लाह और उसकी कि 'फरिश्ते' 'नबी' पर रहमत भेजते है। हे लोगो! जो ईमानमान लाए हो तुम भी उन पर 'रहमत' भेजो और खूब सलाम भेजो।" (33 : 56, पृ. 718)

यहाँ कुरान के ये दो शब्द ध्यान देने योग्य हैं—(1) यसल्लुना और (2) सल्लू। इनमें से पहला शब्द क्रिया का बहुवचन है और दूसरा इसका आज्ञा वाचक है। विभिन्न भाष्यकारों ने "यसल्लुना" का अर्थ "प्रभु शान्ति दे (पैगम्बर को) अथवा "आशीष वचन बरसाओ (पैगम्बर पर)।" मगर वास्तव में यह अर्थ असलियत

को छिपाने की बेकार कोशिश है, जो कि इस शब्द से स्पष्ट होती है। और इसलिए यह कुरान के सामान्य प्रवाह से मेल नहीं खाता है जिसका उद्देश्य मुहम्मद को एक नाशवान और सन्देशवाहक के रूप में प्रस्तुत करना है।

'अस्सालात' इस क्रिया का कर्त्ता है और उसकी मूल धातु भी वही है। जब कभी भी कुरान में 'अस्सालात' शब्द आता है तो उसका अर्थ होता है कर्म काण्ड युक्त प्रार्थना, जिसे कि कोई मनुष्य ईश्वर के लिए भेंट करता है। उदाहरण के लिए, पाठक कुरान (2 : 3, 276) अथवा (4 : 161) को देख सकते हैं।

इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि 'पूजा' और यसल्लुना, 'यबूदून' के पर्यायवाची शब्द हैं। जिसका दूसरा अर्थ परमेश्वर की स्तुति करना है। इस प्रकार आयत (33 : 56) का अर्थ है कि 'अल्लाह और उसके फरिश्ते मुहम्मद की स्तुति या आराधना करते हैं' और वैसा ही मुसलमानों को करना चाहिए, लेकिन उचित सम्मान के साथ।

पैगम्बर के सन्दर्भ में यह असाधारण महत्त्व का है जो सामान्य मुसलमानों के लिए आदेश है। जैसाकि मैंने पहले कहा था कि :

''बा खुदा दीवाना बशद बामुहम्मद होशियार''

यानी कोई अल्लाह के प्रति लापरवाह हो सकता है लेकिन उसे मुहम्मद के प्रति श्रद्धावान होना चाहिए।

यह कथन अत्यन्त अविश्वसनीय है। सभी अन्य धर्मों में, यह मनुष्य है, जो परमेश्वर की पूजा करता है, लेकिन इस्लाम में यह परमेश्वर है जो कि एक मनुष्य (पैगम्बर) की पूजा करता है। फिर भी मुसलमान अपने को एकेश्वरवादी कहते हैं। निश्चय ही वे विश्व में सबसे निम्न श्रेणी के मूर्ति पूजक हैं।

हालांकि, मुसलमानों ने कुरान के शब्दों के उनके स्वाभाविक अर्थों से बिल्कुल भिन्न अर्थ करने के तरीके ढूंढ़ लिए हैं। और इस तरह विभिन्न अर्थ करके अपने मत की रक्षा करने के लिए आत्म वंचना की मजबूत दीवार के पीछे शरण ले ली है। ऐसा करने से वे बुद्धि की तर्कों के आगे ठहर न सकेंगे। इसीलिए वे अपने आलोचकों पर निन्दा का आरोप लगाते हैं, और यह मानने को तैयार नहीं हैं कि इस्लाम सिर्फ मुहम्मदनवाद है, कोई एकेश्वरवादी धर्म नहीं है।

क्योंकि किसी सिद्धान्त की परख उसके व्यवहार से होती है और उस बात को सिद्ध करने के लिए कि विचाराधीन आयत का विभिन्न अर्थ किया गया है। इस विषय में निम्नलिखित बातें कहना चाहूँगा—

(1) क्या यह सच नहीं है कि मुहम्मद की प्रशंसा करना उनकी दैनिक प्रार्थनाओं का एक अंग है ?

(2) क्या मुसलमानों ने एक प्रकार की 'दारूद' व 'मजलिस-ए-दारूद'

नामक मुहम्मद-पूजा विधि विकसित नहीं कर ली है ? जो कि एक सामान्य रिवाज़ पड़ गई है, और जो मुक्ति पाने का मुख्य साधन माना जाता है।

(3) सभी मुस्लिम देशों ने 'नाटिका कलाम' नामक एक छन्दोबद्ध कविता विकसित कर ली है जो कि केवल मुहम्मद के प्रति अत्यन्त प्रशंसापूर्ण समर्पण है।

(4) कव्वाली मुहम्मद की पूजा व प्रशंसा करने का एक गायनात्मक और संगीतमय तरीका है। यह सूफियों एवं उनके अनुयायियों में अत्यन्त लोकप्रिय है।

(5) शहदा, जो कि प्रत्येक मुसलमान के लिए इस्लाम धर्म के सिद्धान्त की बुनियादी स्वीकृति है, जिसमें कि अल्लाह के साथ पैगम्बर मुहम्मद का नाम भी लिया आता है। कुरान की सच्ची शैली में, इसे 'शिर्क' कहा जाता है यानी अल्लाह के साथ किसी अन्य को शामिल करना। यह सबसे भयंकर पाप माना जाता है क्योंकि— "निस्संदेह अल्लाह इस बात को क्षमा नहीं करेगा कि उस के साथ किसी को शरीक़ किया जाए। और इसके नीचे जिसके लिए चाहेगा क्षमा कर देगा। और जो अल्लाह के साथ किसी को शरीक़ ठहराता है वह भटककर बहुत दूर जा पड़ा। (4 : 116, पृ. 242)

मुसलमानों को यह समझना चाहिए कि कुरान का मूल सिद्धान्त तो यह है कि, "अल्लाह *अपेक्षा रहित* और प्रशंसा का अधिकारी है।" (2 : 267, पृ. 175)

पैगम्बर मुहम्मद ने अल्लाह के भी ऊपर यह उच्च पदवी अपने सन्मार्ग दर्शन के सिद्धान्त के माध्यम से प्राप्त की जिसे कि कुरान में दिया हुआ है।

"यह (अल्लाह) की 'किताब' है। इस (के आसमानी किताब होने) में कोई सन्देह नहीं : उन लोगों के लिए मार्ग दर्शन है जो अल्लाह का डर रखते हैं। जो बिन देखे "ईमान लाते, 'नमाज' क़ायम करते और जो कुछ हमने उन्हें दिया है उसमें से खर्च करते हैं (और हे पैगम्बर!) जो (किताब) तुम पर उतारी गई है और जो तुम से पहले उतारी गई थी, सब पर वे ईमान लाते हैं और 'आखिरत' पर यही लोग विश्वास रखते हैं। यही वे लोग हैं जो अपने 'रब' के सीधे मार्ग पर हैं और यही लोग सफलता पाते है" (2 : 2-5, पृ. 127-28)

इस सन्दर्भ में मुख्य शब्द 'मुत्ताकी' है जिसे कि "ईश्वर से" भयभीत, पवित्र, वे जो कि खोने से डरते हैं" आदि के भाव में अर्थ किया गया है। हालांकि, सामान्यता, इसका अर्थ 'सदाचारी' भी माना जाता है। इस प्रकार कुरान केवल सदाचारी का ही मार्ग दर्शक करती है। यह वास्तव में अत्यन्त आश्चर्यजनक है। क्योंकि सदाचारी मनुष्य वह है जो कि स्वयं अपने अच्छे गुणों के द्वारा मार्गदर्शित है। पुनः ये आयतें बताती हैं कि सदाचारी मनुष्य वे हैं जो कि कोई सन्देह किए बगैर कुरान और उसकी माइथोलोजी, जैसे निराकार परमेश्वर में विश्वास तथा 'कयामत' के दिन में विश्वास करते है तथा प्रार्थनाएं करते हैं, आदि-आदि। इस प्रकार पैगम्बर

मुहम्मद ने धार्मिक आस्था के क्षेत्र में से बुद्धि-विवेक के प्रयोग को पूरी तरह वर्जित कर दिया और इस प्रकार मतान्धता को अपने मत का आधार बना दिया है।

धार्मिक आस्था के विषय में बुद्धि और विवेक का पूरी तरह निषेध करके, मुहम्मद को हमेशा के लिए, अपने को सबसे बड़ी मूर्ति के रूप में प्रस्तुत करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। देखिए उन्होंने यह 'कैसे' किया। उन्होंने घोषणा की कि "निश्चय ही तुम लोगों के लिए अल्लाह के 'रसूल' में एक उत्तम आदर्श था, उस व्यक्ति के लिए जो अल्लाह और 'अन्तिम दिन' की आशा रखता हो।" (33 : 21, पृ. 748)

यह है वह विधि जिसके द्वारा पैगम्बर ने अपने समस्त अनुयायियों के लिए स्वयं को आचरण का आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया जिन्हें कि मुहम्मद के समान उठने, बैठने, खाने, पीने, पहनने, बोलने व ऊपर से दिखना जरूरी था। वह इस प्रयास में सफल रहा क्योंकि उसने पुनः कुरान के माध्यम से कुछ और जोड़ा—

(i) "'नमाज़' क़ायम करो और 'ज़कात' दो और 'रसूल' (मुहम्मद) का हुक्म मानो ताकि तुम पर दया की जाए" (24 : 56, पृ. 632)

(ii) "कह दो कि यदि तुम अल्लाह से प्रेम करते हो तो मेरा (मुहम्मद) अनुसरण करो। अल्लाह तुम से प्रेम करने लगेगा और तुम्हारे गुनाहों को क्षमा करेगा।" (3 : 31, पृ. 190)

(iii) "हमने जो रसूल भी भेजा इसीलिए भेजा कि अल्लाह की अनुज्ञा से उसके आदेशों का पालन किया जाए।" (4 : 64, पृ. 233)

यहाँ पाठक देख सकते हैं कि पैगम्बर मुहम्मद ने, अल्लाह के नाम पर, अपना निजी प्रमुत्व किस प्रकार स्थापित किया। इस प्रकार, मार्ग दर्शन के इस्लाम के सिद्धान्त का यही मतलब रह गया है कि मुहम्मद की आज्ञाओं का आंख मींच कर पालन किए जाए। किसी प्रकार के सवाल या संकोच का अर्थ होगा निन्दा, जिसका परिणाम है नरक। क्या आश्चर्य है कि अल्लाह को तो पीछे धकेला दिया गया है और मुहम्मद को सदा सर्वदा के लिए एक महान मूर्ति बना दिया गया है। यदि इस कथन का बारीकी से अध्ययन किया जाए, जो सच्चाई सामने आए बगैर रह नहीं सकती है। यह सभी को पता है कि इस पृथ्वी पर अनेक समय-क्षेत्र हैं जो कि दूरी के साथ एक-दूसरे से धीरे-धीरे घटते-बढ़ते रहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रत्येक क्षण कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई मुसलमान द्वारा मुहम्मद की पूजा होती रहती है।

पाठक याद रखें कि पैगम्बर मुहम्मद ने यह अद्वितीय ईश्वरीय स्थान बुद्धिमत्ता से नहीं बल्कि एक राजनीतिज्ञ और एक राष्ट्रीय साम्राज्यवादी के रूप में प्राप्त किया है। तो आइए इन मौलिक सच्चाइयों को अगले दो अध्यायों में परखें।

अध्याय पाँच

पैगम्बर मुहम्मद एक राजनीतिज्ञ

पैगम्बरपन के मूल स्वरूप की आवश्यकता है कि इसका दावेदार कोई प्रसिद्ध आदमी होना चाहिए। इसलिए उसमें न केवल हावी होने की अदम्य चाह के द्वारा सामाजिक प्रतिष्ठा का सबसे ऊंचा स्थान पाने की इच्छा होनी चाहिए, बल्कि उसमें पर्याप्त बुद्धिमत्ता और साहस भी होना चाहिए। क्योंकि एक पैगम्बर को परमेश्वर, जो कि सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, और सर्वश्रेष्ठ है, का प्रतिनिधि माना जाता है, वह उसका प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता है जब तक कि वह एक चतुर व्यक्ति न हो। इस प्रकार यह मानना सर्वथा उचित है कि राजनैतिक चातुर्य और उसके प्रयोग करने की महत्त्वांकाक्षा के बिना वह परमेश्वर का प्रतिनिधि जैसा दिखने योग्य नहीं हो सकता है। क्योंकि परमेश्वर शक्ति है, और शक्ति ही परमेश्वर है, अत: पैगम्बर को परमेश्वर तुल्य प्रतीत होने के लिए शक्तिशाली होना चाहिए। इसीलिए एक पैगम्बर को राजनीतिज्ञ होना चाहिए क्योंकि समस्त सत्ता का मूल स्रोत ही राजनीति है।

यह केवल एक तर्क पूर्ण निष्कर्ष ही नहीं है, बल्कि एक ऐतिहासिक सत्य भी है। मुख्य सेमीटिक मतों यानी यहूदी मत, ईसाइयत और इस्लाम का प्रसिद्ध संस्थापक अब्राहम अपने समय का एक सामाजिक-राजनैतिक व्यक्ति था। प्रारम्भ में उसने अपने देश को छोड़ दिया, और किसी बिना नाम वाले देश की ओर चल पड़ा। तब यहोवा (यहूदियों के देवता) ने उसे आश्वासन दिया कि वह एक नए राज्य का संस्थापक होगा। किसी राष्ट्र का संस्थापक होना निश्चय ही एक बड़ी और प्रतिष्ठापूर्ण आकांक्षा है। बाइबिल की उत्पत्ति पुस्तक के चौदहवें अध्याय में उस समय के स्थानीय राजाओं का विवरण है। हालांकि इनमें से अनेक राजा अब्राहम के विश्वासपात्र थे और निश्चय ही वह स्वयं भी एक राजनैतिक व्यक्तित्व था। इसकी इस बात से और भी पुष्टि होती है कि जब सोडोम और गोमोर्राह के राजा लड़ाई के मैदान से भाग निकले और लूट की अफरातफरी में अब्राहम के भतीजे लूत का अपहरण कर लिया गया। यह ही वह व्यक्ति था, "जिसने अपने घर में पैदा हुए तीन सौ अठारह सेवकों को युद्ध क्रिया में प्रशिक्षित किया और अगवा करने वालों का डान तक पीछा किया।" (उत्पत्ति 14 : 14)

अब्राहम का घर निश्चय ही एक शाही महल था जिसमें पूर्ण-सुशिक्षित तीन सौ अठारह सेवक रहते थे जो वहीं जन्मे थे। राजा, राष्ट्राध्यक्ष, प्रधानमंत्री, मंत्री अथवा डिक्टेकर एक राजनीतिज्ञ होता है क्योंकि सरकार व्यवहार में राजनीति के अलावा कुछ नहीं है। यही कारण है कि सभी सुविख्यात सेमीटीय पैगम्बर अपने

लोगों के राजनैतिक नेता थे। मोज़ेज़, डेविड, सोलोमन आदि कुछ इसके उदाहरण हैं। मुहम्मद जिसे पैगम्बरों में आखिरी होने का दावा किया जाता है, वह भी इसी सेमीटीय वर्ग का ही था। इसलिए पैगम्बरपन की उस परम्परा में उसे भी राजनीतिज्ञ होना चाहिए।

सच्चाई यह है कि मुहम्मद में व्यावहारिक राजनैतिक चतुराईयाँ अपने पिछले सभी पैगम्बरों से कहीं अधिक थीं। उसने अपने राजनैतिक उद्देश्यों के लिए विवाह सम्बंधों द्वारा व्यक्तिगत और पारिवारिक रिश्ते बनाने के पुराने सिद्धान्त को अपनाया। यही कारण है कि उसकी मृत्यु के बाद, जो पहले चार-खलीफ़ा हुए वे सब उसके वैवाहिक सम्बंधियों में से थे। अबू बकर और उमर उसके ससुर ही थे, और उस्मान और अली उसके दामाद थे। इन लोगों के योगदान के बिना तो इस्लाम अपने प्रारम्भिक दिनों में ही समाप्त हो गया होता।

इसको यहाँ दुहराने की आवश्यकता नहीं है कि *पैगम्बरपन का आध्यात्मिकता और मानव धर्म से कोई लेना देना नहीं है। यह तो एक पैचीदा, दबावपूर्ण और चतुराई भरा मध्यपूर्वी क्षेत्रों का एक राजनैतिक सिद्धान्त है जिसमें वह व्यक्ति, जो अपने को पैगम्बरपन का दावेदार कहता है, ईश्वर को अपनी निजी और राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सबसे अधिक प्रयोग करता है।*

इस छोटी सी पुस्तक में उन सभी मुख्य पैगम्बरों की जीवनियों का राजनैतिक दृष्टि से विचार करना तो सम्भव नहीं है। फिर भी मैं अब्दुल्ला-बिन-उबाय के संदर्भ में, पैगम्बर मुहम्मद के राजनैतिक कार्यकलापों के बारे में कहना चाहूँगा।

आखिर यह अब्दुल्लाह-बिन उबाय कौन था? वह, खज्राजिटों का मुखिया होने के कारण, मदीना में सबसे शक्तिशाली व्यक्ति था। वह उस क्षेत्र के लोगों का बिना ताज का बादशाह समझा जाता था। क्योंकि मुहम्मद ने मक्का से आकर यहाँ शरणा ली थी, उसके सन्देश स्थानीय लोगों में फैलने लगे और धर्मान्तरित लोग पैगम्बर मुहम्मद के प्रति वफ़ादार होने लगे। इस प्रकार एक नई धार्मिक जागृति के कारण ओस और खज़राज कबीलों के बीच पारस्परिक पुरानी लड़ाई कम होने लगी। इस नवीन आध्यात्मिकता ने धीरे-धीरे राजनैतिक पलड़े को भी प्रभावित किया। परिणामस्वरूप अब्दुल्ला बिन उबाय का पक्ष कमज़ोर होने लगा। उसकी मुहम्मद के प्रति घृणा, और मुहम्मद की उसके प्रति नीति का खुलासा निम्नलिखित एक घटना से सुस्पष्ट होता है जिसे कि इस्लाम के प्रारम्भिक इतिहासकार इब्न हिशाम ने लिखा है।

"साद इब्न ओबादा बीमार हो गया और मुहम्मद उसका हाल चाल पूछने के लिए गधे पर चढ़ कर गया। रास्ते में उसने अब्दुल्ला बिन उबाय को अपनी मित्र मंडली में घर के पास के वृक्षों के नीचे छाया में बैठे देखा। शिष्टता के नाते, पैगम्बर

उतरे और उससे और उसके साथियों से दुआ सलामन एवं अभिवादन करने के बाद उसने कुरान की कुछ आयतें गाईं और उनसे अपने नए धर्म को मानने की दावत दी। अब्दुल्ला-बिन उबाय ने उन्हें शान्ति से सुना और फिर जबाव दिया कि "तुम्हारे इस कथन से ज्यादा अच्छा कुछ नहीं हो सकता है, यदि यह सच हो तो। अब, इसलिए तुम अपने घर बैठो और जो कोई तुम्हारे पास आए तो तुम इसे यही सुनाओ और जो तुम्हारे पास न आए तो उसको यह सब कहने से दूर रहो जो कि वह ना पसन्द करता है।"

अब्दुल्ला बिन उबाय के ये वचन इतने कड़वे, अप्रिय और असम्भावित थे, जिससे मुहम्मद को बुरा लगा। साद बिन ओबादा के घर पहुँचकर, जो कुछ अब्दुल्ला के साथ बीता, मुहम्मद ने, उसे सुनाया तो साद ने जबाव दिया कि "उसके (उबाय) के साथ नरमी से पेश आओ क्योंकि जब खुदा ने तुम्हें हमारे लिए भेजा है, और वह देख रहा है कि तुमने उसके कब्जे से जागीर छीन ली है।"

प्रारम्भिक इस्लाम का इतिहास बताता है कि *"साद बिन ओबादा के ये शब्द कि "नरमी से पेश आओ" मुहम्मद पैगम्बर के अब्दुल्ला बिन उबाय के प्रति व्यवहार के राजनैतिक सिद्धान्त बन गए।* पैगम्बर की बढ़ती हुई शक्ति को देखते हुए, अब्दुल्ला ने अनुभव किया कि वह मुहम्मद से सीधी टक्कर लेकर अपने विरोधी को उस राजनैतिक स्तर से नहीं गिरा सकता है जिस पर वह बैठा है। अत: उसने एक गुप्त राजनैतिक आन्दोलन खड़ा किया जिसे कि कुरान की भाषा में 'मुनाफ़िक',कपटाचारी या 'ढ़ोंगी' कहा जाता है। ये वे ही व्यक्ति थे जो ऊपर से अपने को सच्चा मुसलमान कहते थे, लेकिन दिल से वे पैगम्बर को नफ़रत करते थे और परेशान करना चाहते थे। अब्दुल्ला उनका नेता हो गया।

जैसाकि मैं आगे बतलाऊंगा कि कपटाचार सबसे निचले प्रकार का अविश्वास है, और इस्लामी कानून में इसके लिए कठोर दण्ड का विधान है। इस समीक्षा को सीमित करने के उद्देश्य से मैं यहाँ सिर्फ तीन घटनाओं का उल्लेख करना चाहूँगा जिससे सिद्ध होता है कि पैगम्बर मुहम्मद के कार्य इस्लाम के सिद्धान्तों और उसकी भावनाओं के अनुकूल नहीं थे क्योंकि ये सब राजनीति से प्रेरित थे, और इनके परिणामस्वरूप पैगम्बर मुहम्मद का अरेबिया पर पूर्ण नियंत्रण हो सका। *वह सचमुच एक राजनेता था जिसने पुरानी सेमीटीय पैगम्बरपन की परम्पराओं को अपनाया, और जो कि अगले सैकड़ों वर्षों तक राजनीति के* प्रभावी हथियार के रूप में सफल सिद्ध हुई हैं। देखिए उदाहरण :

(1) उहद की लड़ाई में, पैगम्बर के पास प्रारम्भ में एक हजार योद्धा थे जिसमें से तीन-सौ अब्दुल्ला बिन उबाय के थे। जैसे ही सुबह की नमाज़ की अजान लगी तो सारी मुस्लिम सेना नमाज़ अदा करने को झुकी। तब अब्दुल्ला ने अपने तीन-सौ आदमी इकट्ठे किए और वापिस मदीना को कूच कर दिया तथा मुहम्मद को अपने सात सौ लोगों के साथ युद्ध करने के लिए छोड़ दिया।

यह कपटाचार की एक बहुत बड़ी मिसाल थी। फिर भी मुहम्मद ने कपटाचारियों के मुखिया के कोई इस्लामी दण्ड नहीं दिया। यह न केवल धार्मिक, बल्कि सैनिक की दृष्टि से भी एक जधन्य अपराध था। क्योंकि इसके कारण मुहम्मद की हार, और उसके अनेक साथियों की हत्या हो गई।

लेकिन जब से मुहम्मद बदर की लड़ाई में विजयी हुए, तभी से उसके पैगम्बरपन के सितारे चमकने लगे। उसने दावा किया कि इस लड़ाई में उसकी जीत के लिए अल्लाह ने लड़ने के लिए फरिश्तों को भेजा था। कितने आश्चर्य की बात है कि जब अब्दुल्ला ने अपने सैनिकों सहित मुहम्मद का साथ छोड़ दिया और उसे योद्धाओं की ज़रूरत थी, तब अल्लाह ने लड़ने के लिए फरिश्ते क्यों नहीं भेजे?

(2) अब्दुल्ला बिन उबाय का आयशा के प्रति व्यभिचार का दोष लगाना, एक दूसरा सबसे घृणित कार्य था। इस आक्षेपपूर्ण कार्य ने मुहम्मद के परिवार वालों के लिए अनेक मुश्किलें पैदा कर दीं। हदीस (मुस्लिम सं. 6673 खं. 4, पृ. 1748) के अनुसार आयशा ने कहा "जिसने मुझ पर शक़ किया है खुदा उस पर क़हर डाहे' और इन सबमें सबसे अधिक सक्रिय और सर्वाधिक बदनाम अब्दुल्ला बिन उबाय ही था। यह एक भयानक षड्‌यंत्र था जो कि पैगम्बर के सब करे-कराए पर पानी फेरने वाला था। यहाँ तक कि अल्लाह ने भी इसको बहुत बुरा माना, और नीचे लिखी आयतें भेजी :

"और जो लोग सतवन्ती (पवित्र) स्त्रियों पर तोहमत (आक्षेप) लगाऐं, फिर चार गवाह न लाएं, उन्हें अस्सी कोड़े मारो और कभी भी उनकी गवाही स्वीकार न करो।" (24 : 4, पृ. 622)

अल्लाह के नियुक्त किए हुए न्यायाधीश-पैगम्बर मुहम्मद ने आयशा के खिलाफ़ झूठा अभियोग लगाने वाले अन्य लोगों को तो कोड़े लगाए, सज़ा दी, मगर उसके अब्दुल्ला बिन उबाय को कुछ नहीं कहा जो कि इस शरारत को मुख्य रूप से भड़काने वाला था। ईश्वर का एक सच्चा न्यायाधीश अब्दुल्ला बिन उबाय जैसे निन्दनीय अपराधी को तो दैवी सज़ा देनी चाहिए थी, लेकिन एक राजनीतिज्ञ ही अपने स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों के लिए उसकी जान-बूझकर उपेक्षा कर सकता है। यह अपराध इतना गम्भीर था कि आयशा की निरपराधिता के सामने महरबानी के सभी पहलू बेमानी हो जाते हैं। फिर भी पैगम्बर की अकर्मण्यता के कारण अपराधी सम्मानपूर्वक छूट गया।

(3) हदीस (मुस्लिम सं. 6677-6681 खंड 4, पृ. 1754-55) में अब्दुल्ला के मरणोपरान्त उसके दफनाने के वर्णन मिलते हैं। सार रूप में, वे यही बतलाते हैं कि जब अब्दुल्ला बिन उबाय का निधन हो गया तो :

(अ) पैगम्बर उसके शव को उठा कर लाया। (दफ़नाने से पहले), उसे अपने घुटनों पर रखा और उसके थूक को स्वयं चाटा (उसे पवित्र करने के लिए) उसने अपनी कमीज़ अब्दुल्ला के कफ़न के लिए पहले ही दे दी थी।

(ब) अब्दुल्ला-बिन उबाय के बेटे ने पैगम्बर से अपने पिता की मौत का फ़ातिहा पढ़ने की प्रार्थना की। जैसे ही वे दिवंगत कपटी नेता के लिए प्रार्थना करने के लिए उठे, उमर ने इस फ़ातिहा के परिणामों की गम्भीरता को समझते हुए, अल्लाह के दूत मुहम्मद (प्रभु उन्हें शान्ति दे) का लिवास पकड़ कर रोकते हुए कहा ''ओ अल्लाह के दूत! क्या आप इस इंसान का फ़ातिहा पढ़ने जा रहे हैं जबकि अल्लाह ने आपको उसका फ़ातिहा पढ़ने को मना किया है ? तो पैगम्बर ने जबाव दिया : ''अल्लाह ने मुझे छूट देते हुए यह कहा है कि उनके लिए माफ़ी माँगो अथवा उनके लिए माफ़ी मत मांगो : यदि तुम उनके लिए सत्तर बार भी मांफ़ी मांगते तो खुदा उन्हें माफ़ी नहीं देगा (9 : 80, पृ. 382) और मैं सत्तर से एक और अधिक बार माफ़ी मांगने जा रहा हूँ।''

इसके अलावा हदीस नं. 6680 में, जो जोड़ा गया है वह मैं बताना चाहता हूँ कि तुम उनमें से किसी के लिए भी बिल्कुल दुआ मत मांगो और उनकी क़बरों के पास भी मत जाओ। (9 : 84, पृ. 383)

कुरान की आयतों के इलहाम का समयानुसार सही क्रम की कोई नहीं जानता है। यही कारण है कि पश्चिमी विद्वानों ने कहा है कि 'कुरान पीछे से आगे' की ओर लिखी गई है। हदीस नं. 6680 का उपरोक्त, बाद में जोड़ा गया कथन (9 : 84) पैगम्बर के कार्यों को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए किया गया है। उमर का 'पैगम्बर की लिवास' को पकड़ना और उन्हें फ़ातिहा पढ़ने से मना करने से साफ़ प्रगट होता है कि पैगम्बर के साथी भली-भांति जानते थे कि किसी कपटी, बहुदेवतावादी और अविश्वासी के लिए फ़ातिहा पढ़ना गैर-इस्लामी है। यदि इसमें सच्चाई न होती तो उमर पैगम्बर के काम में हस्ताक्षेप करने का साहस ही नहीं करता।

यह भी याद रखना चाहिए कि मुस्लिम विद्वानों के अनुसार (हदीस सही मुस्लिम, नोट नं. 2692, खंड 4, पृ. 1539) *ऐसे पचास मौके आए जिनमें उमर के विचार और सुझाव अल्लाह के इलहामों के अनुकूल थे, और जो कि बाद में कुरान के अंग बना दिए गए। फिर भी मुसलमान कहते हैं कि यह तो अल्लाह की दी गई किताब है, जो मानता है कि वह जो कुछ कहता है, उसमें और कोई दूसरा शामिल नहीं है।*

हदीस (मुस्लिम सं. 5903, खं. 4 पृ. 1539) सिद्ध करती है कि कुरान की वे आयतें जिनमें क़िबला का तय करना, औरतों का पर्दा करना, बदर के युद्ध बन्दियों के भाग्य का फैसला करना आदि हैं, वे सब फैसले उमर के थे, जो कि कुरान में शामिल कर लिए गए हैं।

पैगम्बर मुहम्मद ने जो कुछ किया बह सब शेष बचे हुए कपटियों का दिल जीत कर उन्हें अपनी ओर करने की एक राजनैतिक प्रक्रिया थी। उमर का फैसला

इनमें से कोई मरे तुम कभी उसके जनाज़े की नमाज़ न पढ़ना, और न उसकी कब्र पर खड़े होना। इन्होंने अल्लाह और पैगम्बर में अविश्वास किया और वे बेईमानवाले होकर मर गए। (9 : 84) जो कि औचित्यता का अंश मानते हुए उसे कुरान का अंग बना दिया गया है, वह औचित्य स्थापन का हिस्सा थी जो कि पैगम्बरपन के राजनैतिक पहलू को छिपाने का प्रयास मात्र है। आयत (9 : 80) और (9 : 84) में आपसी काफ़ी समानता पर विचार करने पर लोगों को आश्चर्य होता है कि इस घटना के फौरन बाद ही अल्लाह के दिमाग में यह पूर्ण मनाही की बात कैसे आई? कुरानी कानून के हिसाब से तो पैगम्बर को यह करने का अधिकार नहीं था। आप स्वयं ही देखें।

"........और उन्हें (कपटाचारियों को) कत्ल करो जहाँ कहीं तुम उन्हें पाओ, उनमें से किसी को अपना मित्र या सहायक न बनाओ।" (4 : 89, पृ. 237)

ऐसा इसलिए है कि कपटाचारी गैर-ईमानवाले हैं, और एक मुसलमान का कर्त्तव्य है कि वह उसे पकड़े, अपमानित करे और नष्ट कर दे। पुनः देखें :

(*i*) 'मुनाफ़िक' अल्लाह को धोखा देना चाहते हैं हालांकि वही उन्हें धोखे में डाले रखने वाला है.....हे 'ईमान' लाने वालो! ईमानवालों के मुकाबले में गैर-ईमानवालों (काफ़िरों) को अपना मित्र न बनाओ.....निश्चय ही 'मुनाफ़िक' आग (जहन्नम) के सबसे निचले कक्ष में होंगे.....(4 : 142, 144, 145, पृ. 247)

(ii) "हे 'नबी' 'काफ़िरों' और 'मुनाफ़िकों' से जिहाद करो और उनके साथ सख्ती से पेश आओ। उनका ठिकना 'जहन्नम' है और वह क्या ही बुरा ठिकाना है।" (9 : 73, पृ. 380)

(iii) "मदीना के लोगों में भी कुछ ऐसे हैं जो निफ़ाक़ (कपट नीति) में पक्के हो गए हैं तुम उन्हें नहीं जानते। हम उन्हें जानते हैं, जल्द ही हम उन्हें दोहरी सज़ा देंगे।" (9 : 101, पृ. 385)

(iv) "ये (मुनाफ़िक) पक्के दुश्मन हैं इनसे बचते रहो। इन पर अल्लाह की मार पड़े। ये कहाँ से भटक जाते है।" (63 : 4, पृ. 1042)

कुरान तो अपने सगे मां बाप के लिए भी प्रार्थना करने को मना करता है यदि वे गैर-ईमानवाले हैं। हदीस मुस्लिम नं. 2129 (खं. 2, पृ. 557) के अनुसार, अल्लाह पैगम्बर को अपनी मां के लिए भी प्रार्थना करने को मना करता है। तो फिर वह कानूनी तौर पर 'मुनाफ़िकों' के मुखिया के लिए प्रार्थना कैसे कर सकता था? यह सब तो राजनीति है। यह जानना दिलचस्प होगा कि पैगम्बर मुहम्मद ने अपने राजनैतिक उद्देश्य कैसे प्राप्त किए।

■■

अध्याय छः

पैगम्बर मुहम्मद और राष्ट्रवाद

किसी भी पैगम्बर के लिए राष्ट्रवाद का नारा एक स्वाभाविक और सबसे प्रभावी हथिहार होता है जो चाहता है कि उसे केवल परमेश्वर के समान पूजा एवं प्यार किया जाए क्योंकि उसके हावी होने की चाह इतनी अधिक प्रबल होती है कि वह और किसी को अपने समान अथवा अपना प्रतिदन्दी नहीं देख सकता है। यही कारण है कि मुहम्मद ने अपने पैगम्बरपन का सिद्धान्त यह बनाया कि

''अल्लाह के अलावा अन्य कोई परमेश्वर नहीं है।''

अल्लाह परमेश्वर का अरबी काम है। इसमें सुस्पष्ट है कि यह एकेश्वर बाद का प्रतीक है। लेकिन अल्लाह अपने फरिश्तों सहित, पैगम्बर की पूजा करते हैं, सार की बात यही हुई कि *यह मुहम्मद ही है जो कि केवल अल्लाह है।* मुहम्मद ने अपनी अद्वितीयता इससे भी बनाई रखी और यह भी दावा किया कि वह सबसे बड़ा पैगम्बर ही नहीं, बल्कि आख़िरी पैगम्बर भी है।

पैगम्बरपन की घोषणा के द्वारा आम जनता की केवल अल्लाह के रूप में स्वीकृति पाना निश्चय ही एक बहुत बड़ा व मुश्किल काम है क्योंकि दावेदार यह सम्मान हमेशा-हमेशा के लिए चाहता है, न कि थोड़े से समय के लिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राष्ट्रवाद सबसे सरल और सही साधन है और पैगम्बर अपने ही देश का, अपनी ही भाषा बोलने वाला व अपनी संस्कृति व अपने देश के महापुरुषों की प्रशंसा करता है। इससे उद्देश्य प्राप्ति के लिए लोगों को संगठित करना सरल हो जाता है। पैगम्बर की बुद्धिमत्ता इसी में है कि वह अपने लोगों को इस बात के लिए तैयार करे कि उनकी उन्नति और अवनति उतनी ही होगी जितनी वे उसमें और उसके बताए हुए मार्ग पर विश्वास करके चलेंगे। *यहाँ मुख्य आधार यह है कि कुरान को दैवी और शाश्वत होने का दावा किया गया है। क्योंकि मुहम्मद 'दैवी कानून' के मूल स्रोत का आधार है। अतः इसके प्रति पूर्ण निष्ठा का अर्थ वास्तव में, पैगम्बर की प्रशंसा करने जैसा हो जाता है। जो कि इसको अन्तिम लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। क्योंकि यही वह व्यक्ति है जो अपने अनुयायियों को 'जन्नत' में ले जा सकता है।*

फिर भी, यह बात साफ़-साफ़ समझ लेनी चाहिए कि एक पैगम्बर अपने देश के लिए सबसे निष्ठावान नेता होता है जो कि उन्हें यश, उन्नति और समृद्धि दिलवाने की चाह रखता है। ऐसा इसलिए है कि इसके प्रयास से राष्ट्र जितना ही अधिक समृद्धिशाली होगा, लोगों द्वारा उतनी ही आसानी से उसके दैवी होने की

सम्भावना अधिक हो जाएगी जैसे कि बिल्ली, अधिक बड़े काम करने के लिए, चूहे से अधिक सामर्थ्यवान होती है। यदि पैगम्बर में स्वयं राष्ट्र भक्ति नहीं होगी तो वह अपने साथियों में भी राष्ट्र गौरव जागृत नहीं कर पाएगा।

इस बात के अनेक प्रमाण मिलते हैं कि मुहम्मद एक बड़ा राष्ट्रीय नेता था क्योंकि उसमें अरबी जाति की श्रेष्ठता में विश्वास था और उसने उस लक्ष्य को पाने के लिए पैगम्बरपन का प्रयोग किया। फिर भी मुसलमान इस बात पर बल देते हैं कि मुहम्मद का राष्ट्रवाद से कोई सम्बंध नहीं है और उसका सन्देश तो मानव प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीय भाई चारे पर आधारित है।

इसके अतिरिक्त मुसलमान दावा करते हैं कि पैगम्बर होने के कारण मुहम्मद तो 'शिर्क' यानी मूर्त्ति पूजा, के आखिरी चिन्हों तक को मिटाने आया था, जो कि मानता है कि अल्लाह के अलावा और भी अनेक देवता हैं। इस बारे में वह इतना उत्साही था कि उसने सभी प्रकार की मूर्त्तियों, चित्रों और तस्वीरों को भी गैर-इस्लामी माना। इस बात की सच्चाई हदीस बुखारी द्वारा सातवें खण्ड (पृ. 543-46) में दी गईं हदीस सं. 840, 841, 842, 843 और 844 से सिद्ध होती है।

देखिए! अल्लाह सब लोगों को छोड़ कर केवल अपने में विश्वास पाने के लिए कितना लालायित है। फिर भी, वह अपने को सर्वशक्तिमान और सृष्टि कर्ता कहता है। यदि ऐसा सच होता तो वह ऐसी सृष्टि कर देता जिसमें सभी लोग अन्य सब देवताओं को छोड़कर केवल अल्लाह को ही पूजते। इससे अल्लाह इस निराशा से भी बच जाता, और मानव जाति मूर्ति पूजा विरोधी शक्तियों द्वारा धार्मिक घृणा और मानव विनाश और हत्याकांडों से भी बच जाती। *यदि अल्लाह ने वास्तव में मुहम्मद को उपरोक्त विनाशकारी उद्देश्य के लिए भेजा है तब तो यह एक असफल प्रयोग सिद्ध हुआ क्योंकि आज विश्व में उससे कहीं अधिक, अगणित मूर्तियां है, जब मुहम्मद उन्हें मिटाने आया था। यहाँ तक कि मुसलमान स्वयं सबसे निचले किस्म के मूर्ति पूजक हो गए हैं। वे सभी अपनी जेबें उन करेंसी नोटों से भरना चाहते हैं जिन पर कुछ राष्ट्रीय विजेताओं के चित्र बने हुए है। उनके पास अपने प्रियजनों के फोटो खीचने के लिए कैमरें है, घरों में फिल्म देखने के लिए टेलीविज़न सेट हैं, और अपने-अपने देशों में फिल्म उद्योग हैं।*

मूर्ति पूजा समाप्त करना निश्चय ही मुहम्मद का पवित्र धार्मिक उद्देश्य नहीं रहा होगा। यदि ऐसा था, तो अल्लाह और मुहम्मद दोनों ही इस उद्देश्य में पूरी तरह असफल हो गए, क्योंकि मूर्ति पूजा, समाप्त होने की जगह, कई गुना और अधिक बढ़ गई है। इससे यह भी सिद्ध नहीं होता कि अल्लाह सबसे बुद्धिमान अथवा सर्वशक्तिमान है। क्या ऐसा सिद्ध होता है ?

फिर भी, जब हम मुहम्मद की, महानता को राष्ट्रीय दृष्टि से, आंकने का

प्रयास करते हैं तो वह राष्ट्रीय नेताओं में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। इसके प्रमाण इतने चमत्कारिक हैं कि कोई अंधा ही उसकी उपेक्षा कर सकता है :

मुहम्मद के लोग यानी अरबी लोग अनेक छोटे-छोटे कबीलों में बंटे हुए थे, जो लगातार आपस में लड़ते रहते थे। गरीबी और अज्ञानता ने उन्हें और भी नगण्य बना दिया था। इसके विपरीत, यहूदी, जो कि अरब के विभिन्न क्षेत्रों में बसे हुए थे, जिनमें से मक्का, मदीना और टैफ, में वे अपनी व्यापारिक पकड़ के कारण, महत्त्वपूर्ण स्थिति में थे। यहूदियों की उच्चता उनके मत के कारण थी, जो कहता है कि :

(*i*) यहूदी लोग परमेश्वर के चुने हुए लोग हैं, और इसलिए वे उच्च जाति के हैं। (ईश्वर द्वितीय श्रेणी के लोगों को नहीं चुन सका जिन्हें वह अपना कह सके! क्या वह कह सकता था?)

(*ii*) यहूदियों के परमेश्वर, जिहोवा ने यहूदियों के लिए मौलिक सिद्धान्त बतलाए। उनमें कहा गया है कि वे समृद्धि पाने का प्रयास करें। वास्तव में, उन्हें इतना धनवान होना चाहिए कि वे दूसरी को उधार दे सकें, परन्तु लें नहीं।

(*iii*) बाइबिल ने, यहूदियों के मुख्य नगर जैरुसलेम को अत्यधिक अलौकिक सम्मान दिलवाया है।

(*iv*) मोज़िज नामक एक पैगम्बर ने अपने लोगों को राष्ट्र दिलवाया और उन्हें जातीय गौरव, प्रतिष्ठा, यश और शक्ति प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया।

क्योंकि अरबी लोग मूर्ति पूजक थे, जो कि धर्म के 'भारतीय आदर्श' से मिलता-जुलता था, उन्हें सीधे-सीधे किसी एक पैगम्बर या मसीहा के बारे में आत्मचेतना नहीं थी। क्योंकि ये यहूदी ही थे जिन्होंने पैगम्बरपन की अवधारणा को प्रचारित किया जिसके फलस्वरूप उन्हें राष्ट्रीय एकता और अद्वितीयता मिली, अत: मुहम्मद ने सोचा कि इसी प्रकार के प्रारूप पर अरबी राष्ट्रवाद को विकसित किया जा सकता है। मुहम्मद को यहूदी सिद्धान्तों के राष्ट्रवाद की अपील आकर्षक ही नहीं लगी, बल्कि एक-दूसरी बात भी थी कि यहूदियों का पैगम्बर अब्राहम अरबों और यहूदियों, दोनों का एक पूर्वज भी था। ये दोनों बातें अत्यन्त प्रेरणादायक रहीं। फिर भी एक बहुत बड़ी कमी भी थी : कि यहूदी धर्म ग्रंथ तोराह में अरबों को यहूदियों से निचले स्तर का माना गया है। क्योंकि वे ईशामेल के वंशज माने जाते हैं, जो कि माता हगर, जो कि मिश्र की पुत्री सराह की सेविका थी, और पिता अब्राहम थे। इसके विपरीत यहूदियों का पूर्वज इसाक़, अब्राहम की पत्नी सराह का पुत्र था। इसीलिए यहूदियों के पूर्वज इसाक़ के जन्म को (इशामेल की अपेक्षा) उच्चता दी जाती है। इसके बारे में बाइबिल कहती है। *''परन्तु मैं (परमेश्वर) अपनी वाचा इसाक़ ही के साथ सिद्ध करूंगा।'' (उत्पत्ति 17 : 21, पृ. 13)*

हालांकि यहूदी परमेश्वर इसाक़ को वरीयता देता है, मगर फिर भी वह इशामेल की उपेक्षा नहीं करता है : *"दासी के पुत्र इशामेल से भी मैं एक जाति उत्पन्न करूंगा, इसलिए कि वह तेरा (अब्राहम का) वंश है।" (उत्पत्ति 21 : 13, पृ. 16)*

उत्पत्ति (17 : 20) में यह दैवी वचनबद्धता विस्तार में कही गई है *"इशामेल के विषय में भी मैंने तेरी सुनी है : मैं इसको भी आशीष दूंगा और उसे फुलाऊँ-फलाऊंगा और अत्यन्त ही बढ़ा दूंगा; उससे बारह प्रधान उत्पन्न होंगे और मैं उसकी एक बड़ी जाति बनाऊंगा।"*

यद्यपि ओल्ड टेस्टामेंट के गम्भीर अध्ययन से सुस्पष्ट होता है कि इशामेल को (अपने अधिकार के रूप में) ये सुविधाएं नहीं दी गई हैं, लेकिन इसलिए कि वह अब्राहम के वंश में से कुछ है। यह तो दैवी समझौता है कि जिससे कि कोई मनुष्य पृथ्वी पर ईश्वरीय शक्तियाँ, गुणों और वरीयताओं के कारण ईश्वर का विशेष प्रतिनिधि या 'विकार' बन जाता है और ऐसा समझौता इसाक़ के साथ हुआ था। यही कारण है कि परमेश्वर घोषणा करता है कि :

"क्योंकि (यहूदी) अपने परमेश्वर यहोवा की पवित्र प्रजा है; यहोवा ने पृथिवी भर के सब देशों के लोगों में से तुझ को चुन लिया है। (व्यवस्था विवरण 7 : 6, पृ. 161)

यहूदी उच्चता को बनाए रखने के लिए परमेश्वर बलपूर्वक कहता है कि :

"यहोवा तेरे (यहूदियों लिए के) अपने आकाश रूपी उत्तम भंडार को खोलकर, तेरी भूमि पर समय पर मेंह बरसाया करेगा, और तेरे सारे कामों पर आशीष देगा, और तू बहुतेरी जातियों को उधार देगा, परन्तु किसी से तुझे लेना न पड़ेगा" (व्यवस्था विवरण 28 : 12, पृ. 178)।

पुनः बाइबिल (उत्पत्ति 22 : 9-12) का वचन है कि इसाक़ को ही परमेश्वर के लिए बलिदान दिए जाने का सम्मान दिया गया था, ताकि उसे चुनी हुई जाति का पिता होने योग्य बनाया जा सके। बाइबिल के ये वचन न केवल यहूदी जाति की श्रेष्ठता को घोषित करते हैं बल्कि यहूदियों की अपेक्षा अरबों को अपमानित करते हैं। मुहम्मद जैसा प्रखर राष्ट्रवादी इस प्रकार के अपमान को सहन न कर सका। उसके राष्ट्राभिमान ने उसे कोई ऐसा दूसरा रास्ता निकालने के लिए प्रेरित किया जो अरबों को तो उठा सके, और यहूदियों को गिरा सके। निम्नलिखित हदीस इस सच्चाई को बताती है।

"जिन दो कबीलों में से जिन्हें परमेश्वर ने सर्वोत्तम चुना, वे इशामेल और इसाक़ के वंशज थे। परमेश्वर ने इशामेल के बच्चों को वरीयता दी (यानी अरबों को, इसाक़ के बच्चों-यहूदियों की अपेक्षा)। तब परमेश्वर ने कुरेशों (इशामेल के वंशजों में से) की चुनी हुई जाति में से मुहम्मद को चुना, और फिर उसके अपने

परिवार को, सारे कुरेश परिवारों में से सर्वोत्तम चुना और सभी मनुष्यों में से मुहम्मद को सबसे श्रेष्ठ चुना'' (जामे तिरमीज़, खण्ड 2)

यहाँ पाठक मुहम्मद के जातीय स्वाभिमान को देख सकते हैं। वह न केवल यहूदियों की अपेक्षा अरबियों को श्रेष्ठता प्रदान करता है बल्कि शेष अरब जाति की अपेक्षा अपने परिवारीजनों हाशमियों को भी वरीयता देता है। फिर अन्त में, वह अपने को मनुष्य समाज में 'खैर-उल-वशर' (यानी मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ) की श्रेणी में होने का दावा करता है। यह अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि सभी गैर-अरबी मुसलमान सहृदय मुहम्मद के आखिरी हज के संदेश को सहृदय यह सिद्ध करने को पढ़ते हैं कि इस्लाम में रंग-भेद और राष्ट्र-भेद जैसी कोई चीज नहीं है। यह सन्देश, वास्तव में, एक धोखाधड़ी है। क्योंकि यह मुहम्मद के सिद्धान्तों और व्यवहारों के ठीक विपरीत है। पुनः यह बात याद रखनी चाहिए कि उस समय पैगम्बर के श्रोताओं में अफ्रीकी उत्पत्ति के कुछ गुलामों को छोड़ कर, सब अरबी लोग थे। क्योंकि अरबियों के विभिन्न रंग होते हैं, तो मुहम्मद का रंग-भेद के विषय में संकेत, अरबों के रंग-भेद से है न कि अफ्रीकियों से जिनको कि पैगम्बर के प्रशासन में कभी कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया गया था। यहाँ वह मशहूर हदीस याद रखने योग्य है कि ''अपनी मातृभूमि के प्रति प्रेम ईमान का अभिन्न अंग है।''

उपरोक्त हदीस से मुहम्मद की राष्ट्रभक्ति सुस्पष्ट प्रगट होती है तथा इससे यह भी प्रगट होता है कि वे अपने अरबी साथियों को यह विश्वास दिलाना चाहते थे, कि वे यहूदियों, से उत्तम हैं जिनके जातीय सम्बंध, धार्मिक गठबन्धन की शक्ति द्वारा एक विशेष राष्ट्रीयता से जुड़े हुए हैं। साफ़-तौर पर, यही कारण है कि *मुहम्मद ने अरबिया को कीर्तिमान करने के लिए, मोज़ेज़ के आदर्श के आधार पर, इस्लाम को स्थापित किया।*

मुहम्मद एक बुद्धिमान व्यक्ति था। वह भली भांति जानता था कि अरेबिया के यहूदी सम्पन्न और सामाजिक दृष्टि से सुदृढ़ थे। यदि उनको किसी प्रकार अरब राष्ट्रवाद का अंग होने के लिए एकमत कर लिया जाए तो इस गठबन्धन से अरेबिया सब प्रकार से बहुत लाभान्वित होगा। इसलिए, प्रथम चरण के रूप में, उसने अरबों और यहूदियों को एक मूल का बता कर उन्हें जोड़ने का प्रयास किया। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रयास था जिससे कि अब्राहम से लेकर चली आई सम्मिलित वंश परम्परा की भावनाओं को उभारकर राष्ट्रीय एकता को बढ़ाया जा सके। यह अरब को एक सर्वश्रेष्ठ सेमीटिक राष्ट्र बनाने का सबसे गम्भीर प्रयास था। इस संदर्भ में निम्नलिखित तथ्यों पर भी विचार कीजिए :

(1) मुहम्मद ने अपना राष्ट्रीय अभियान यहूदियों की जातीय श्रेष्ठता के दावे को स्वीकारने से प्रारम्भ किया। कुरान कहता है कि :

"हे इज़राइल की सन्तान! मेरी उस कृपा को याद करो जो मैंने तुम पर की थी और वह कि मैंने तुम्हें संसार वालों पर बड़ाई दी थी।" (2 : 122, पृ. 145)

(2) अपना धर्म परिवर्तन करना बड़ा मुश्किल कार्य है। लेकिन पैगम्बर मुहम्मद की बुद्धिमत्ता ने धर्मान्तरण के इस कड़वे घूंट को पीना भी सरल बना दिया। उसने घोषणा की कि इस्लाम कोई नया मत नहीं है। लेकिन यह तो उसी मत की निरंरता बनाए रखना है जिसे कि अल्लाह ने एक पैगम्बर से दूसरे पैगम्बर तक हस्तान्तरित किया :

"उसने तुम्हारे लिए वही 'दीन' (धर्म) निर्धारित किया है जिसकी ताकीद उसने नूह को की थी, और जिसकी 'बह्य' (हे मुहम्मद!) हमने तुम्हारी ओर की है और जिसकी ताकीद हमने इबराहीम और मूसा और ईसा को की (इस हुक्म के साथ) कि 'दीन' कायम करो" (42 : 13, पृ. 876)।

(3) यहूदियों का भय दूर करने के उद्देश्य से कि कहीं इस्लाम को स्वीकारने से उनकी राष्ट्रीय पहचान ही समाप्त न हो जाए, मुहम्मद ने अपना वर्चस्व कम करते हुए घोषणा की कि इस्लाम तो यहूदियों के संरक्षक अब्राहम का मत है.......

"तुम्हारे बाप इबराहीम का पन्थ (तुम्हारा पंथ है) उसने तुम्हारा नाम मुस्लिम रखा था पहले भी और इसमें भी—ताकि तुम 'रसूल' पर गवाह हो और तुम लोगों पर गवाह हो।" (22 : 78, पृ. 601)

(4) मुहम्मद ने यहूदी-इस्लामी एकता को बढ़ाने के लिए, अब्राहम की विशेष प्रशंसा की :

"निश्चय ही इबराहीम एक पेशवा, अल्लाह के आगे पूरे अदब (भक्ति और विनय-भाव) से रहनेवाला था, सबसे कट कर एक (अल्लाह) का हो गया था, वह 'शिर्क' करनेवालों में से न था।" (16 : 120, पृ. 502)

(5) "इबराहीम न 'यहूदी' था, और न 'ईसाई', बल्कि वह तो सबसे कटकर एक (अल्लाह) का हो रहनेवाला मुस्लिम था और वह 'मुश्रिकों' में से न था।" (3 : 67, पृ. 195)

(6) "अल्लाह ने कहा "मैं तुझे (इब्राहीम को) सब लोगों का नायक बनाऊंगा।" (2 : 124, पृ. 145)

(7) मुहम्मद का जेरुसलेम को 'क़िबला', यानी कि नमाज़ पढ़ने की दिशा, के रूप में मानना उनकी राजनैतिक रणनीति का एक उत्तम उदाहरण है, जिससे सिद्ध होता है कि वे अरब को एक श्रेष्ठ राष्ट्र बनाने के लिए भाई-चारा, लचीलापन और दूर-दृष्टि का प्रयोग करते थे। जैसाकि मैं आगे बतलाऊंगा कि यह राजनैतिक दृष्टि से एक साहसी कदम था जो कि उनकी नेक नीयती के आधार के बिना सम्भव नहीं था। वास्तव में, यह उनके बलिदान का एक उत्तम उदाहरण है जो कि मुहम्मद

की हस्ती जैसा व्यक्ति ही ऐसा कदम ले सकता था। यदि यहूदियों ने पैगम्बर मुहम्मद की बात मान ली होती तो, आज 1400 वर्षों से जो अद्वितीय सम्मान काबा को मिल रहा है, वह जेरुसलेम को मिलता होता जिससे जेरुसलेम पर दैवी कृपा होती तथा यहूदी जो कि इस्लाम की स्थापना के समय से ही जो अकथनीय निन्दा एवं कष्ट भोग रहे हैं, उससे बच जाते।

यहूदियों का इस्लाम स्वीकार न करने के कारण पैगम्बर मुहम्मद उनके विरोधी हो गए और उसने फैसला किया कि अब वह एक विशाल सेमीटिक राष्ट्र की अपेक्षा एक शुद्ध अरबी राष्ट्र स्थापित करेंगे। पैगम्बर के यहूदी-विरोधी कार्यों की तीव्रता को देखते हुए, यह बिल्कुल साफ़ है कि उन्होंने यहूदियों और उनके मत को अरबी मत का स्थायी दुश्मन माना।

इसलिए उन्होंने एक व्यापक योजना बनाई :

(1) अरेबिया से सभी यहूदियों को निकालकर एक शुद्ध अरबी राज्य बनाना।

(2) इस्लाम को एक स्वतः चालित अरब साम्राज्यवाद का साधन इस तरह बनाना कि यद्यपि उद्देश्य में तो यह तीव्र विदारक और भयंकर हो मगर ऊपर से इसकी अपील, उदार, आकर्षक और सम्मोहित करने वाली हो। वास्तव में यह इसी प्रकार की मानसिक छवि अन्य गैर-अरबी मुसलमानों में पैदा करे, जैसी कि एक शमा, परवानों के लिए होती है जिसमें कि वे स्वयं उसके ऊपर जलने को तैयार हो जाते हैं।

(3) इस बात को सोचते हुए कि, यहूदी सारे विश्व में फैले हुए हैं और उनके उद्योग धंधों के कारण उसका प्रभाव भी है, उसने यहूदी-घृणा के सिद्धान्त को इस्लाम का एक अंग बना दिया, ताकि विश्व भर के मुसलमान, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में, यहूदियों से घृणा करने के लिए इकट्ठे हो जाएं।

इस पैगम्बरीय योजना का एक भाग यहाँ दिया जा रहा है जबकि शेष दो भाग अगले अध्यायों में दिए जाएंगे। जैसे भाग दो 'इस्लाम-एक स्वचालित अरब साम्राज्यवाद का साधन', अध्याय सात में, और 'पैगम्बरों का संघर्ष', अध्याय आठ में दिया जाएगा।

भाग 1. यहूदियों को अरब से निकालना

हदीस (मुस्लिम सं. 4363, खंड 3, पृ. 1161) बताती है कि पैगम्बर ने कहा *"ओ यहूदियो! इस्लाम कबूल कर लो और तुम सुरक्षित रहोगे.....तुम्हें पता होना चाहिए कि यह पृथ्वी अल्लाह की है, और उसके पैगम्बर की है, और मैं चाहता हूँ कि मैं तुम्हें इस देश से निकाल दूँ।"*

इस संदर्भ में बानू कैनुका नामक यहूदी कबीले की कहानी इस प्रकार है—

(अ) बानू कैनुका का निष्कासन

मुसलमानों ने बानू कैनुका नामक कबीले की, 624 एडी में, घेराबंदी की। एक पखवाड़े के बाद उन्होंने आत्म समर्पण कर दिया। पैगम्बर तो अधिकांश को समाप्त ही कर देना चाहते थे, लेकिन अब्दुल्ला बिन उबाय, जो उनका सहयोगी रह चुका था, ने उन्हें माफ़ करने की प्रार्थना की। पैगम्बर ने अपना मुँह फेर लिया और उस मांग की उपेक्षा की। मगर अब्दुल्ला कहता ही रहा, और फिर उसने पैगम्बर की बाँह पकड़ ली। पैगम्बर ने इस पर चिल्लाकर उसे डांटा, और उसको बाँह छोड़ देने को कहा, लेकिन उसने कहा कि : जब तक वे इन पर दया नहीं करते, वह बाँह नहीं छोड़ेगा। इस बात के समर्थन में अब्दुल्ला ने यहूदी साथियों के अनेक सद्‌गुणों को याद दिलाया और कहा "मैं आपको नहीं जाने दूँगा जब तक कि आप मेरे इन दोस्तों पर दया नहीं करते हो : तीन-सौ कवचधारी और चार-सौ बिना कवचधारियों ने मुझे हदीक और बोथ के मैदानों में बचाया है। ओ मुहम्मद! क्या तुम इन्हें एक दिन में ही मार डालोगे? (दी लाइफ़ आफ़ मुहम्मद-म्यूर, पृ. 242)

हालाँकि अब्दुल्ला अब सत्ताहीन हो चुका था, एवं इतना प्रभावशाली नहीं था, मगर इतना कमजोर भी नहीं कि उसकी बिल्कुल ही उपेक्षा कर दी जाए। आखिर पैगम्बर ने दुखी मन से कहा "इन्हें जाने दो" परमेश्वर इन्हें और उसे (अब्दुल्ला) को भी सज़ा दे।"

हालाँकि पैगम्बर ने उनकी जानें माफ़ कर दीं, मगर उसने सारे यहूदी कबीला बानू कैनुका को पूरी तरह से अरेबिया से निकाल दिया। यहाँ अब्दुल्ला बिन उबाय के उदाहरण से पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि अरेबिया के यहूदी विश्वासहीन या नास्तिक नहीं थे। वे अत्याचारी भी नहीं थे, जैसा कि मुस्लिम इतिहासकारों ने दर्शाया है। किसी मनुष्य को अपनी स्वतंत्रता और परम्पराओं की रक्षा के लिए संघर्ष करने को बदनाम करना अनुचित है।

(ब) खैबर पर हमला

इस संदर्भ में कुरान बताता है कि *"और उन्हें देखते रहो, वे जल्द देख लेंगे। क्या ये हमारी यातना के लिए जल्दी मचा रहे हैं? जब वह इनके आंगन में आ उतरेगा, तो वह बहुत बुरी सुबह होगी, डराए गए लोगों की। एक समय तक के लिए उनकी ओर से पलट आओ और देखते रहो, वे जल्द ही देख लेंगे। तेरे 'रब' की महिमा के, जो इज्जत का मालिक है, प्रतिकूल है जो कुछ ये लोग (उसके बारे में) बयान करते हैं।" (37 : 175-180, पृ. 812-813)*

उपरोक्त कुरान की आयतों का क्या उद्देश्य है? वे बतातीं हैं कि पैगम्बर ने खैबर के यहूदियों को इस्लाम स्वीकारने की दावत दी, लेकिन उन्होंने उसकी

अनसुनी कर दी। पैगम्बर ने उस पर विचारने के लिए काफ़ी समय दिया। फिर यकायक लड़ाई का कोई नोटिस दिए बगैर, जैसी कि पिछले सैकड़ों वर्षों की परम्परा थी, पैगम्बर ने खैबर के यहूदियों पर हमला कर दिया जिसका हदीस मुस्लिम न. 4437 (खंड 3, पृ. 1195) में वर्णन है :

"हम नगर में घुसे, उसने (मुहम्मद) कहा "परमेश्वर महान है। खैबर बरबाद हो जाएगा....यह उनके लिए बुरा दिन है जिनको इसके लिए चेतावनी दी गई थी (और उसका ध्यान नहीं दिया गया)।" लोग (अपने घरों से निकल कर) अभी अपने काम पर जानेवाले ही थे। उन्होंने (अचम्भे में) कहा : 'मुहम्मद आ गया है।' हमने शक्ति द्वारा उन पर कब्जा कर लिया।"

यह वास्तव में आश्चर्यजनक है कि पैगम्बर मुहम्मद बिना चेतावनी दिए लोगों पर हमला करता है, जो कि उस समय की युद्ध परम्परा के विरुद्ध था, ख़ास तौर पर जबकि उनका यही एक मात्र अपराध था कि उन्होंने मुहम्मद को अपना 'नबी' या 'मसीहा' नहीं माना। इससे भी अधिक अचम्भे की बात तो यह है कि अल्लाह इस अवसर इतना गौरवान्वित होता है और कहता है कि *"प्रभु तुम्हारा यश बढ़े, यश के देवता।"*

इस हमले से जो स्थिति पैदा हुई, उसका वर्णन हदीस (मुस्लिम नं. 3325 खंड 2, पृ. 868-69) में दिया गया है और भाष्यकार ने उसे फुट नोट (नं. 1870) में दिया है। इस सफल अभियान के फलस्वरूप, मारे व बर्बाद किए गए यहूदियों की जो सम्पत्ति थी, वह अल्लाह की कृपा से विजेताओं की हो गई। इस विशाल पवित्र लूट में एक चकाचौध करने वाली सत्रह वर्षीय अत्यन्त सुन्दरी कुरेज़ा और अल नादिर के सरदार हुयाय्य बिन अरबताब की बेटी साफ़िया भी थी। वह शाही ख़जाने के अधिकारी, किनाना की पत्नी थी, जो कि खज़ाने के रहस्य बताना नहीं चाहता था। पैगम्बर ने अल जुबेयार बिन अल-अवाम को कहा कि उसे "सताओ जब तक कि तुम्हें सब कुछ न मिल जाए।" परिणामस्वरूप एक तेज चमकदार लोहे का हथियार उसके सीने पर घुस गया। जब तक कि वह लगभग मरणासन्न नहीं हो गया।" ख़जाना मिल जाने पर वह महत्त्वहीन हो गया और पैगम्बर के आदेश पर उसे मार दिया गया।"

इस पवित्र विजय ने अभागे युद्ध के कैदियों को पवित्र धर्म योद्धाओं की लूट की सामिग्री बना दिया उनमें से एक धिया नामक योद्धा आगे बढ़ा और कहा "ओ अल्लाह के दूत! मुझे कैदियों में से एक लड़की दे दो।" उसने जवाब दिया "जाओ और कोई भी लड़की ले लो।" उसने साफ़िया बिन हुयाय्य को चुना। धिया के दूसरे साथियों ने घटनाक्रम की गम्भीरता को समझते हुए पैगम्बर से कहा : "वह (साफिया) केवल तुम्हारे योग्य है.....हमने युद्ध बन्दियों में से किसी को उसके

समान सुन्दरी नहीं देखा।" यह देखना सरल होगा कि यह उसके सामाजिक स्तर के संदर्भ में नहीं है, परन्तु वह एक अत्यन्त मोहक सुन्दरी है। पैगम्बर ने उन्हें बुलाया और धिया को कहा "कैदियों में से किसी दूसरी स्त्री को ले लो।"

हदीस (मुस्लिम सं. 3329, खंड 2., पृ. 870-71) में बाकी घटना का विस्तृत विवरण दिया हुआ है जो उस दिन हुआ जबकि उसके पति सहित उसका समस्त परिवार समाप्त कर दिया गया। पैगम्बर ने साफ़िया को उससे शादी करने की शर्त पर जिन्दा छोड़ा। इस हदीस का लेखक एनास, जोड़ता है कि *"पैगम्बर ने मेरी मां को बुलवाया और उससे (साफ़िया को) सजाने को कहा।"* अल्लाह के दूत (प्रभु उन्हें शान्ति दे) तब खैबर से बाहर निकल आए (और चलते रहे) जब तक कि वे शहर (खैबर) से बिल्कुल बाहर आ गए। वह रुका और एक तम्बू उसके लिए लगाया गया, रात्रि गुजारने के लिए।

दूसरे दिन शादी की छोटी-सी दावत दी गई। फिर उसके बाद साफ़िया को उसके पीछे ऊंट पर बैठाकर मदीना को, वापिसी की यात्रा शुरू हुई। मंजिल के करीब पहुँचने पर उनका ऊंट बिदक गया और वे दोनों गिर गए। जैसे ही लोग उनकी तरफ दौड़े पैगम्बर ने कहा "हमारे कोई चोट नहीं लगी है। हम मदीना में घुसे और वहाँ घर की युवती स्त्रियां (पैगम्बर की अन्य पत्नियां) आईं। उन्होंने उसे (साफ़िया को) देखा और गिरने के लिए उसको दोषी ठहराया।"

इस विषय पर 'ईमानवालों' ने मुहम्मद की साफ़िया के साथ विवाह के बार में मुहम्मद के पक्ष में कुछ अविश्वसनीय तर्क दिए हैं। लेकिन सच्चाई उसको लुभावनी सुन्दरता थी। पैगम्बर ने यात्रा रोक दी, जब वह सिर्फ खैबर के करीब ही दूसरी तरफ था, और यदि शत्रु बदला लेना चाहते तो वह उनसे अधिक दूर नहीं था। कुछ संशयवादी लोगों ने सचेत किया है कि पैगम्बर को साफ़िया से फौरन ही शादी नहीं कर लेनी चाहिए थी, जैसाकि उसके किया क्योंकि वह एक जवान विधवा थी। स्वयं पैगम्बर के अपने नियम के अनुसार, उसे इतना समय तो देना चाहिए था ताकि पता लग सके कि वह कहीं गर्भवती तो नहीं है।

(स) बानू कुरेज़ा के साथ व्यवहार

यहूदियों के बानू नादिर कबीले को मदीना से निकालने के बाद, पैगम्बर ने बानू कुरेज़ा नामक एक-दूसरे कबीले को भी निकालने का फैसला किया। क्योंकि मुसलमान व्याख्याकारों की यह आदत रही है कि वे प्रत्येक घटना को तोड़ मरोड़ कर इस प्रकार प्रस्तुत कर देते हैं ताकि उनके उद्देश्य की पूर्ति हो। मैं इतिहास की इस महत्त्वपूर्ण घटना पर उनकी व्याख्याओं की उपेक्षा करके, पैगम्बर द्वारा यहूदियों के साथ व्यवहार के विषय में कहना चाहूंगा और विषय की तारतम्यता को बनाए रखने के लिए मैं अपनी पुस्तक "फैथ एण्ड डिसेप्शन" में से उद्धरण देना चाहूँगा।

आयशा के अनुसार, पैगम्बर डिचके युद्ध से तभी वापिस ही लौटे थे और अपने हथियार खोले भी नहीं थे, जबकि फरिश्ता जिब्रील उपस्थित हुआ और उसने पैगम्बर को बानू कुरेजा को समाप्त करने को कहा (हदीस मुस्लिम, सं. 4364, खंड 3, पृ. 1161) जरा देखिए! अल्लाह कितने घमंड के साथ इस घटना को कुरान में कहता है :

''और 'किताब वालों' में से जिन लोगों ने उन (आक्रमण करने वालों) का साथ दिया था (अल्लाह) उन्हें उनकी गढ़ियों से उतार लाया, और उनके दिलों मै रौब डाल दिया—एक गिरोह को तुम कत्ल कर रहे हो और एक गिरोह को कैद कर रहे हो और उसने तुम्हें उनकी धरती और उनके घरों और उनके मालों का वारिस बना दिया, और उस भूमि का भी जिस पर तुमने पग नहीं रक्खा।'' (33 : 26-27, पृ. 749)

बानू कुरेजा के यहूदी पच्चीस दिनों तक घेरे बन्द होकर यातना सहते रहे और इस शर्त पर आत्मसमर्पण किया कि उनके भविष्य के बारे में अन्सारों का सरदार साद बिन मुबाद फैसला करेगा। हदीस नं. (सही मुस्लिम, सं. 4368 खं. 3, पृ. 1164) में यह फैसला दिया गया है। तदनुसार ''......*उनके लड़नेवालों को मार दो और उनकी स्त्रियों और बच्चों को कैद कर लो।*''

यहूदियों को उनके किले से निकाला गया और जानवरों की तरह अलग-अलग बाँध दिया गया। वे रात भर अपने परमेश्वर से प्रार्थना करते रहे एवं दया की भीख मांगते रहे। जबकि पैगम्बर के आदेश पर धर्मान्ध मुसलमानों ने एक लम्बी गहरी खाई खोदी। यह यहूदियाँ के लिए एक विशाल सामूहिक कबरिस्तान था, जिन्होंने अपने धर्म, सम्पत्ति एवं बाल-बच्चों व स्त्रियों की रक्षा करने के लिए मुहम्मद की अवज्ञा की थी। जैसे ही अंधेरे को चीरता हुआ सूर्योदय होने वाला था यह कबरिस्तान इन निरीह शिकारग्रस्तों को आख़िरी शरण देगा। अल्लाह की इबादत (नमाज़) करने के बाद सब प्राणियों पर दयालु होने का दावा करने वाले पैगम्बर मुहम्मद इस दर्दनाक क्रिया को पूरा करवाने के लिए इस भयानक खाई के पास आकर बैठे। अपनी मंजिल से बेखर यहूदी पुरुषों को पांच-छः के जत्थों में लाया गया।

हर एक को, जिसके हाथ पीछे कमर से बंधे हुए थे, लेट जाने को और खाई के किनारे विशाल गर्दन रखने को कहा गया, जहाँ पर कि अली और जुबैर खड़े थे, जिन्होंने अपनी तेज़ तलवारों से उनकी गर्दनों को अलग कर दिया और शाम तक यह काम पूरा कर दिया गया। *इन आठ सौ व्यक्तियों की निर्मम हत्या ने अल्लाह और मुहम्मद को प्रसन्नता दी होगी जो कि आज की बढ़ती हुई जनसंख्या में लगभग अस्सी हजार पुरुषों के बराबर होती; उनकी सन्तानों को गुलाम बना लिया गया और उनकी स्त्रियों को रखैल बना दिया ताकि ईमानवालों को उनसे जन्नत के सुखों की पूर्वानुभूति यहीं हो जाए।*

साद-बिन-मुआद का फैसला अत्यन्त कठोर अत्याचार का प्रतीक है, विशेष

कर जबकि पैगम्बर मुहम्मद को "सब पर दया" का दावेदार कहा जाता है, न कि केवल मुसलमानों का। मुस्लिम विद्वानों का यह कहकर इसका बचाव करना कि मुआब बीमारी के कारण मानसिक दृष्टि से ठीक हालत में नहीं था। यह वास्तव में एक इस्लाम विरोधी रवैया है क्योंकि एक-दूसरी हदीस कहती है कि सिद्धान्त के अनुसार जब काज़ी मानसिक दृष्टि से ठीक न हो तो वह कोई फैसला न करे। मुस्लिम विद्वानों का यह रवैया झूठा है क्योंकि हदीस (मुस्लिम सं. 4369,खं. 3, पृ. 1164) साफ़-साफ़ कहती है कि पैगम्बर ने फैसले को यह कहकर पूरी तरह उचित ठहराया है, कि *"तुमने उनके मामले को महान और यशस्वी परमेश्वर के फैसले के अनुसार किया है।"*

मुस्लिम विश्वासियों को, युद्ध की लूट की सामग्री के रूप में जो यहूदी स्त्रियां हाथ लगीं, उनमें एक बाईस वर्षीया रिहाना नामक मोहक सुन्दरी भी थी, जिसके पिता, पति और अन्य सम्बंधी पैगम्बर की आज्ञा से कत्ल करके गाढ़ दिए गये थे। मुहम्मद ने, ज़रा भी समय खोए बगैर उससे उसकी पैगम्बरी मानने और उसकी पत्नियों में से एक होने की दावत दे दी। लेकिन वह यह समझ न सकी कि जो "सब पर दयावान" है वह एक महिला से ऐसा कैसे कह सकता है जो कि स्वयं दुख, शोक और मानसिक पीड़ा से ग्रस्त है। जब उसने इस्लाम स्वीकारना मना कर दिया, तो पैगम्बर ने उसे रखैल बना दिया जो कि आमतौर पर एक अविवाहित गुलाम औरत होती है। इस्लामी कानून के अनुसार रखैल का मालिक उसके साथ विषय-भोग कर सकता है मगर कानून उसके बच्चों को नाज़ायज़ मानता है। पैगम्बर ने एक दूसरी रखैल भी स्वीकारी थी जिसे कि मिश्र के गवर्नर ने उसे भेंट स्वरूप दिया था। उसका नाम मैरी (मैरिया) था और उसने इब्राहीम नामक एक बेटे को जन्म भी दिया था।

उपरोक्त घटना से यह साफ़ समझा जा सकता है कि बानू कुरेज़ा एवं अन्य यहूदी कबीलों के प्रति व्यवहार जातीय विनाश का एक दर्दनाक उदाहरण है। यहूदियों ने यह पीड़ा सिर्फ इसलिए भुगती क्योंकि उन्होंने अरब मुस्लिम बनना स्वीकार नहीं किया। हम प्राचीन इतिहास में इतनी तीव्र राष्ट्र भक्ति का कोई दूसरा उदाहरण नहीं पा सकते हैं। फिर भी मुसलमान विश्वास करते हैं कि इस्लाम राष्ट्रवाद को नहीं मानता है। वे इस बात पर बल देते हैं कि यह तो अन्तर्राष्ट्रीय भाई-चारे का सन्देश है!

यह एक पूर्णतया ग़लत धारणा है। सच्चाई यहाँ यह है जो कि इस्लाम के असली राष्ट्रवादी स्वरूप को उजागर करती है :

(1) वास्तव में, इस्लाम, मूल रूप से, पैगम्बर मुहम्मद के अपने जाति गौरव के प्रति आस्था पर आधारित है जो कि अरबों को यहूदियों से ऊंचा उठाना चाहता था। सुविधा के लिए मैं यहाँ हदीस के इस प्रमाण को यहाँ दुबारा देना चाहता हूँ : *"जिन दो जातियों जिन्हें ईश्वर ने सर्वोत्तम चुना वे इसाक़ और इशामेल के वंशज*

थे। ईश्वर ने इसाक़ (यहूदियों) की सन्तानों की अपेक्षा इशामेल (अरब) की सन्तानों को वरीयता दी। तब ईश्वर ने (इशामेल के वंशजो में) कुरेश कबीले की सन्तानों में मुहम्मद की उत्पत्ति की और फिर उस परमेश्वर ने कुरेशों में से सर्वोत्तम परिवार को चुना और उस परिवार के मनुष्यों में से मुहम्मद को सर्वोत्तम चुना'' (जामे तिर्मीज़, खं. 2)

क्योंकि इस हदीस के प्रत्येक शब्द से मुहम्मद के राष्ट्रीय गौरव की बात झलकती है, तब यह कल्पना करना अत्यन्त कठिन हो जाता है कि इस्लाम का अरेबिया के हित साधन के अलावा कोई दूसरा उद्देश्य भी हो सकता है! लेकिन जब हम इस पर गम्भीरता से विचार करते हैं तो यही अर्थ निकलता है कि इस्लाम एक संकीर्ण राष्ट्रवाद की अवधारणा दर्शाता है जो कि केवल कुरेशों को शासन का अधिकार देता है जो कि स्वयं पैगम्बर मुहम्मद का अपना वंश है।

(2) ''अल्लाह करे कि उनका सर्वनाश हो जाए जो कुरेशों को नीचा दिखाना चाहते हैं'' (जामे तिर्मीज, खं. 2)

(3) ''पैगम्बर ने कहा.....शासन करने का अधिकार कुरेशों को ही रहेगा, जब तक वे इस्लामी कानून का पालन करते रहेंगे और जो कोई भी उनका विरोधी होगा, अल्लाह उसे तबाह कर देगा।'' (सही बुखारी खं. 4, सं. 704-403, पृ. 463)

(4) ''शासन करने का अधिकार कुरेशों को ही रहेगा चाहे भले ही उनमें से दो ही व्यक्ति बचे'' (सही बुखारी, खंड 4, सं. 705, पृ. 463-464)

यह याद रखना चाहिए कि सही-बुखारी के नवें खंड में साफ़ कहा गया है कि इन्हीं हदीसों के आधार पर अबू बकर को पहला खलीफ़ा चुना गया था क्योंकि वह कुरेश कबीले का था, और परिणामस्वरूप दूसरे अरब कबीलों को अपना दावा वापिस करना पड़ा। यही बात इस्लाम के राजनैतिक सिद्धान्तों का एक अंग बन गई। यही कारण है कि सदियों तक, बगदाद और स्पेन, दोनों जगहों के खलीफ़ा कुरेश परिवारों के ही रहे।

(5) क्योंकि पैगम्बर मुहम्मद अरब राष्ट्रवाद के प्रबल समर्थक थे, इसकी पुष्टि उनके मक्का यानी स्वदेश अरेबिया के प्रति असीम प्रेम से प्रगट होती है। पैगम्बर ने कहा *''ओ मक्का! अल्लाह की क़सम तुम दुनिया के किसी भी हिस्से से बेहतर हो, और मेरे लिए बाकी दुनिया से ज्यादा प्यारी हो।'' (जामे तिर्मीज़, खंड 2)*

(6) *''जो भी अरेबिया के खिलाफ़ काम करेगा, मेरा प्यार नहीं पाएगा, और न मैं उसके लिए हस्तक्षेप करूंगा।'' (जामे तिर्मीज., खंड 2)*

(7) पैगम्बर का निजी जन्म स्थान मक्का के प्रति दैवी सम्मान प्राप्त करने के लिए उसने दावा किया कि जब अल्लाह ने आदम को ईडन के बगीचे से निकाला तो उसने मक्का जाने, और वहाँ परमेश्वर का 'पूजा घर' बनाने का उसको आदेश

दिया, और उसने वैसा ही किया।

यहाँ समझने की बात यह है कि यदि कोई अपना मकान हरियाली घाटी में बना सके तो वह कभी भी रेगिस्तान में अपना मकान बनाना नहीं चाहेगा। तो फिर परमेश्वर ने अरेबियाके रेगिस्तान को ही क्यों चुना? पुनः क्योंकि आदम पहला व्यक्ति था, जो कभी रहा होगा, तो उस समय मक्का अथवा अरेबिया जैसी कोई जगह या स्थान नहीं रहा होगा। किसी भी 'ईमानवाले' ने इस बात पर कभी भी विचार नहीं किया। यह तो उनके पूर्णतया दिमागी बहकावट का सबूत है।

(8) मक्का को जैरुसलेम से ज्यादा पवित्र होने का दावा किया गया क्योंकि पैगम्बर ने इस बात का दावा किया कि इसको स्वयं अब्राहम द्वारा दुबारा बनाया गया था। मगर ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है कि पैगम्बर अब्राहम कभी भी मक्का आए। वह तो मक्का से सैकड़ों मील दूर मैसोपोटामिया के उर का एक निवासी था। यदि ऐसा सच होता तो बाइबिल (ओल्डटेस्टामेंट) इसका निश्चय ही वर्णन करती। यह तो पैगम्बर का ही एक प्रयास था कि मक्का-अरेबिया को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति और सम्मान का केन्द्र बनाया जाए ताकि विदेशी राज्य भी अरबी संस्कृति की उच्चता को स्वीकार करें।

(9) इस बात की सुनिश्चित करने के लिए कि मक्का को अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान मिले, पैगम्बर ने यहाँ तक दावा किया कि अल्लाह पूजने योग्य है क्योंकि वह भी मक्का से सम्बंधित है :

"मुझे केवल इस प्रदेश (मक्का) के स्वामी की पूजा करने का आदेश हुआ है जिसने इसे पवित्र बनाया है।" (27 : 91, पृ. 681)

(10) एक बात याद रखनी चाहिए कि मोज़िज़ ने यहूदियों को ख़ास लोग बनाने के लिए परमेश्वर को इज़राइल से जोड़ा था। पैगम्बर मुहम्मद ने भी अपने अरब राष्ट्र को 'दैवी बनाने के लिए इसी आदर्श को अपनाया था ताकि अन्य सभी लोगों द्वारा भी इसे सांस्कृतिक दृष्टि से आदरणीय माना जाए। देखिए प्रमाण :

(*i*) "तुम सर्वोत्तम समुदाय हो, जो लोगों में पैदा हुआ। तुम भलाई का हुक्म देते हो और बुराई से रोकते हो।" (3 : 110, पृ. 202)

यहाँ गैर-अरबी मुसलमान, विशेष कर भारतीय, पाकिस्तानी व बंगलादेशी, जो कि लम्बे समय तक राजनैतिक गुलामी व अपमानीकरण के फलस्वरूप अपना सब राष्ट्रीय गौरव भुला चुके हैं, वे अपनी मानसिक हीन भावना के कारण, "तुम" का अर्थ 'उम्मा' यानी मुसलमानों का अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय मान लेते हैं जबकि असली सच्चाई यह है कि जब इस आयत का 'इलहाम' हुआ था तो उस समय कोई 'उम्मा' नहीं था। केवल अरबी मुसलमान थे। कृपया इसका सही अर्थ समझने के लिए नीचे लिखी आयत को पढ़िए :

11. *''क़सम है इस स्पष्ट 'किताब' की। निश्चय ही हमने इसे अरबी कुरआन बनाया है ताकि तुम समझो।'' (43 : 2 – 3, पृ. 888)*

इसके बाद किसी प्रकार की अनिश्चितता की सम्भावना नहीं रह गई है। कुरान अरबी भाषा में उतारी गई है ताकि ''तुम'' यानी अरब के लोग, इसे समझ सकें। इसलिए इस्लाम केवल अरबवासियों के लिए ही है क्योंकि यह कुरान उनकी भाषा में है।

उपरोक्त विवेचन से सुस्पष्ट है कि पैगम्बर मुहम्मद एक बहुत बड़ा राष्ट्रवादी था। एक विशुद्ध अरब राष्ट्र बनाने के लिए उसने बड़े व्यवस्थित ढंग से अन्य जातियों का सफ़ाया करने का कार्यक्रम बनाया और अपने लोगों को प्रेरित करने के लिए, एक अद्वितीय उत्साह के साथ उन्हें आश्वस्त किया कि उन्हें महान राष्ट्र बनाने के लिए ही अल्लाह ने भेजा है। साथ ही उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान पाने, और असम्मान को अस्वीकारने का कर्त्तव्य निश्चित किया है (3 : 105)

अरबों का यह दैवी कर्तव्य कि **''यश प्राप्त करो और अपयश को अस्वीकार करो।''**, का नारा उन्हें मानवता का संरक्षक बना देता है, और इस प्रकार वे सभी मुसलमानों के प्रति जिहाद घोषित करने और अपना सांसारिक उद्देश्य पूरा करने के अधिकारी हो जाते हैं।

एक पैगम्बर, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, अत्यन्त अहंकारी व महत्त्वांकाक्षी मनुष्य होता है। वह चाहता है कि उससे मनुष्यता के आवरण को बिना हटाए परमेश्वर से उत्तमतम माना जाए, क्योंकि यह पर्दे के पीछे की क्रिया के द्वारा उसके कार्य गैर-स्वार्थी और दैवी-कर्त्तव्य के एक अंग बन जाते हैं। अपने को इस अद्वितीय स्थान तक पहुँचाने के लिए उसे एक सुदृढ़ और सुअनुशासित राष्ट्र की जरूरत होती है जो कि उसके उद्देश्य के लिए पूर्णतया समर्पित हो। इस प्रकार की महत्त्वाकांक्षा पूर्ति के लिए अनुयायी चाहिए जो कि 'दीन' की मदिरा से इतने-मदमस्त हों कि वे मानवता के आधार विवेक का मखौल उड़ा सकें। यही कारण है कि पैगम्बर अपने सपने पूरा करने के लिए 'खुदाई इलहामों' का सहारा लेता है। निसंदेह यह मानसिक बदलाव लाने का सबसे प्रभावी तरीका है जो कि मनुष्य को गिराकर इसे बन्दर के स्तर पर ला देता है और वह मान और अपमान के बीच का अन्तर नहीं देख सकता है। सम्मान्य वह जिससे उसके उद्देश्य पूर्ति हो और बाकी सब असम्मान्य है।

एक महान् युग इष्टा होने के कारण पैगम्बर मुहम्मद जानता था कि राष्ट्रों के इतिहास बनते-बिगड़ते रहते हैं। इसलिए एक अवनत राष्ट्र एक पैगम्बर को दैवी स्तर पर बनाए नहीं रख सकता है। *उसने अपनी कूटनीतिज्ञता की शक्ति द्वारा इस्लाम को एक स्वचालित अरब साम्राज्यवाद बना दिया। मगर यह किस प्रकार किया गया ? लोगों को यह सच समझना मुश्किल होगा कि यह एक पवित्रता, ईश्वर भक्ति और निष्ठा की सबसे लुभावनी आड़ में किया गया है। अगले अध्याय में* हम इस विषय पर प्रकाश डालेंगे।

■ ■

अध्याय सात

इस्लाम-अरब साम्राज्य का एक स्वचालित साधन

केवल मुहम्मद ही पहला व्यक्ति नहीं था जिसने अरेबिया में स्वयं को अल्लाह का पैगम्बर होने का दावा किया हो। बनी असद का मुखिया, तालिहा था जिसके पास दैवी शक्ति प्राप्त होना माना जाता था। उसे एक युद्ध में खालिद ने हरा दिया था। इसी प्रकार एक-दूसरा व्यक्ति मुसेलिमा भी इसका दावेदार था। उसने चमत्कार दिखाए और दावा किया कि उसे अल्लाह ने मुहम्मद के साथ पैगम्बरपन का गौरव होने के लिए भेजा है। उसने तो यहाँ तक कहा कि मुहम्मद ने उसके दावे को मान लिया है। आखिर में वह, अल-येमामा को लड़ाई में मारा गया, जो कि इस्लाम के प्रति अस्तित्व के लिए भयंकारी हो सकता था। इसके अतिरिक्त अल-अस्वद जो कि यमन का 'गुप्त पैगम्बर' कहलाता था, इस पद का दावेदार था। हालांकि वह एक बहादुर और कुशल योद्धा था, मगर वह उद्दण्ड था और इससे लोकप्रिय नहीं था। इस्लाम के अनुयायियों ने अनेक प्रकार से उसे फंसा कर उसका अन्त कर दिया।

एक ही समय में, एक ही देश में, अनेक पैगम्बरों का होना दर्शाता है कि पैगम्बरपन का परमेश्वर से कोई सम्बंध नहीं है। यह तो अपने असामान्य तरीकों से लोगों को प्रभावित करने की योजना मात्र है वर्ना परमेश्वर एक ही समय में अरब में इतने सारे पैगम्बरों को नहीं भेजेगा। सुस्पष्ट है कि ये लोग स्वयं प्रेरित पैगम्बर थे। पैगम्बरपन की इस दौड़ में मुहम्मद जीत गया क्योंकि उसने राष्ट्रवाद का नारा लगाया जिसमें, उस समय के देशभक्त लोगों, जैसे अबू बकर व उमर, को प्रभावित किया, तथा जिनकी सामूहिक कोशिशों से इस्लाम न केवल समाप्त होने से बच गया बल्कि उसकी उन्नति में काफ़ी सहयोग दिया। इस दौड़ में अन्य लोग इसलिए असफल रहे क्योंकि उन्होंने क्षेत्रीय समस्याओं पर ध्यान दिया। इसके विपरीत मुहम्मद की योजनाएं न केवल राष्ट्रवादी थीं, बल्कि अत्यन्त महत्त्वाकांक्षापूर्ण थीं। क्योंकि उनसे अरबों को साम्राज्यवादी कीर्ति मिलने की सम्भावना थी, जो कि दुख, यातनाओं और अवनति के अलावा कुछ नहीं जानते थे। यह एक सपना था जो कि मुहम्मद के व्यक्तित्व जैसे वाला व्यक्ति ही पूरा कर सकता था। उसकी सफलता निश्चय ही उस विकासवादी उक्ति 'सर्वोत्तम ही सफलता के योग्य' की पुष्टि करती

है। इसका अल्लाह से कोई सरोकार नहीं है, जो स्वयं ही अपनी कीर्ति के लिए मुहम्मद पर निर्भर रहता है। तो आइए, मुहम्मद के अरब साम्राज्यवाद की योजना पर एक दृष्टि डालें।

मुहम्मद ने दावा किया कि वह परमेश्वर का एक पैगम्बर है और उसके इस दावें में कोई अनौखी बात भी नहीं है क्योंकि कुरान के अनुसार :

''और हर समुदाय (राष्ट्र) के लिए एक 'रसूल' है। तो जब उनके पास उनका 'रसूल' आ जाता है तो उनका फ़ैसला न्यायपूर्वक कर दिया जाता है, और उन पर ज़ुल्म नहीं किया जाता।'' (10 : 47, पृ. 403)

इस विषय को कुरान (2 : 148) में भी दोहराया गया है। सुस्पष्ट है कि कोई भी पैगम्बर उनकी सभी समस्याओं को उचित ढंग से हल करने, उन्हें संगठित कर एक तेजस्वी राष्ट्र बनाने के लिए आता है। यद्यपि कुरान के अनुसार, राष्ट्र को संगठित करने का प्रभावी उपाय है क़िबला (परमेश्वर की प्रार्थना करने की दिशा) यानी जब सभी मुसलमान उसी एक दिशा की ओर मुंह करके अपने स्वीकृत परमेश्वर की पूजा करते हैं तो इससे उनकी एकता प्रगट होती है। यही कारण है कि हदीस बुखारी (सं. 20, खंड 6, पृ. 18) बताती है कि प्रत्येक राष्ट्र का अपना एक क़िबला होता है। कुरान भी इसकी पुष्टि करता है।

पैगम्बर ने पहले यहूदियों के सबसे पवित्र नगर जैरुसलेम को अरब के मुसलमानों के लिए क़िबला घोषित किया था। लेकिन फिर सोलह माह तक ऐसा रखकर, उसने उसे बदल कर पैगम्बर के जन्म स्थान मक्का के पवित्र काबा को क़िबला घोषित कर दिया। वैसे मैं जेरूसलेम को मुस्लिम क़िबला घोषित करने की पेचीदियों के बारे में अगले अध्याय में बताऊंगा। मगर यहाँ इतना कहना काफ़ी होगा कि यह परिवर्तन पैगम्बर के राष्ट्रीय उद्देश्य की योजना की पूर्ति के लिए किया गया था। कुरान कहता है कि :

''अब मूर्ख लोग कहेंगे : इन (मुसलमानों) को इनके उस क़िबले से जिस पर ये थे, किस चीज ने फेर दिया ? कहो : पूर्व और पश्चिम अल्लाह ही के हैं वह जिसे चाहता है सीधा मार्ग दिखाता है......और तुम जिस (क़िबले) पर थे उसे तो हमने केवल इसलिए क़िबला ठहराया था ताकि हम उन लोगों में से, जो पीठ पीछे फिर जाने वाले हैं उन लोगों को जान लें....हम आकाश की ओर तुम्हारे रुख की गर्दिश देखते रहे हैं तो हम उसी क़िबूले की ओर तुम्हें फेर देते हैं जिसे तुम पसन्द करते हो तो, तुम अपना मुँह 'मसजिदे हराम' (काबा) की ओर फेर दो, और जहाँ-कहीं भी तुम हो (नमाज में) उसी की ओर अपने मुँह करो।'' (2 : 142-144, पृ. 148-149)

उपरोक्त आयतों से यह स्पष्ट है कि अल्लाह द्वारा जैरुसलेम से काबा को क़िबले का बदलना, अपनी मर्जी से नहीं, बल्कि मुहम्मद की इच्छा पूर्ति के लिए था जैसा कि हदीस (मुस्लिम सं. 5903, खं. 4, पृ. 1539) बताती है कि इसका सबसे पहले सुझाव दूसरे खलीफ़ा उमर ने दिया था जिसकी परसिया के एक गुलाम ने हत्या कर दी थी जो उसके विचार से वह (उमर) एक नस्लवादी था।

यहाँ अल्लाह के तर्क पर विचार कीजिए कि "पूर्व और पश्चिम दोनों ही अल्लाह के है।" यदि पूर्व और पश्चिम समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, तो फिर अल्लाह लोगों को अपना (क़िबला) जैरुसलेम से काबा की ओर बदलने के लिए दबाव क्यों डाल रहा है ? वे जिस दिशा की ओर चाहें उधर मुंह करके नमाज़ क्यों नहीं कर सकते हैं ? यह निर्णय मुहम्मद ने, अल्लाह के नाम पर अरब साम्राज्यवाद के उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिया था। वास्तव में, क़िबला के परिवर्तन ने यहूदियों के भाग्य पर महान विनाशकारी प्रभाव डाला था और शायद इसका मानव इतिहास पर भी घातक प्रभाव हो। फिर भी यह अरब साम्राज्यवाद के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ है।

पैगम्बर मुहम्मद में राजनैतिक चतुराई अत्यन्त थी। जैसा कि पहले कहा गया है कि प्रत्येक राष्ट्र का अपना पैगम्बर होता है परन्तु उसने ऐसा प्रयास किया जो कि उसके मामले में यह भिन्न है। क्योंकि वह पैगम्बर अरबों के लिए ही नहीं, बल्कि सभी राष्ट्रों के लिए भी था जैसाकि मिश्क़त हदीस में है *"प्रत्येक पैगम्बर अपने राष्ट्र के लिए नियुक्त होता है लेकिन मैं सभी राष्ट्रों का पैगम्बर नियुक्त किया गया हूँ।" (मिश्क़त 5500, खं. 3)*

जब हम मुहम्मद के विश्व-भर के पैगम्बरपन के दावे को, मुसलमानों के क़िबले को जैरुसलेम से हटाकर काबा में लाने के फैसले से जोड़ते हैं, तो हम मुहम्मद की दूरदर्शिता व बुद्धिमानी की गहराई को मानते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि गैर-अरबी मुसलमान अपना कोई अन्य क़िबला नहीं बना सकते हैं जो कि उनके राष्ट्रीय सम्मान और संगठन का केन्द्र बन सके। साथ ही उन्हें अरेबिया के क़िबला को अपना क़िबला जैसा मानें, और इस प्रकार अरेबिया के नियमों और अरबी संस्कृति को मानें तथा अपने देश की परम्पराओं को त्यागें। व्यवहार में, क्या तुम इसका मतलब समझते हो ? इसका उत्तर नीचे है :

मक्का को क़िबला मानने से यह स्थान आध्यात्मिक सम्मान का सबसे बड़ा केन्द्र बन गया। छोटे-बड़े सभी राष्ट्रों के मुसलमान इसकी ओर मुंह करके साष्टांग प्रणाम करते हैं, न केवल दिन में पाँच बार, बल्कि हर समय, क्योंकि विश्व भर के विभिन्न देशों में एक ही क्षण में विभिन्न समय होता है। नियमित साष्टांग दण्डवत

या नमन करने से उनकी मानसिकता में विदेशी गुलामी पैदा होती है जो उन्हें अचेतनतावश मक्का का आज्ञाकारी बना देती है। इससे उनकी तर्क शक्ति कम होती जाती है, और उसी अनुपात में, मुहम्मद के जन्म स्थान मक्का को, पूजन करने की आस्था में तेज़ी बढ़ती जाती है। यह आश्चर्यजनक है कि लोग कैसे मुहम्मद से इस दुनियायी जीवन और अगले जीवन में भी दयालुता के लिए अल्लाह की मध्यस्थता करने की प्रार्थना करते हैं!

सामान्यतया किसी राष्ट्र को दूसरे-राष्ट्र के प्रति सम्मान शक्ति के आधार पर देना पड़ता है तथा विजित राष्ट्र हमेशा विजेता को घृणा करता है, और आज़ाद होना चाहता है। लेकिन इस मामले में, सभी गैर-अरबी मुसलमान, अरबी संस्कृति के गुलाम बनने के लिए भक्ति के आंसू बहाते दिखाई देते हैं। क्या यह एक अनूठा आदर्श नहीं है कि जिसमें मेमना स्वयं कसाई से ही कसाई के घर ले जाने की विनती करता है?

यह सब मुहम्मद (प्रभु उन्हें शान्ति दे) की बुद्धिमत्ता का कौशल है। मानवीय दुर्बलताओं से सुपरिचित पैगम्बर मुहम्मद ने अपने गैर-अरबी अनुयायियों पर भी अधिक मानसिक दबाव डाला ताकि वे अपनी मूल देश की संस्कृति की उपेक्षा करके अरेबिया की संस्कृति को और भी अधिक उत्साह से अपनाएं। उसने यह लक्ष्य अरब संस्थानों की आध्यात्मिक गरिमा को उठाकर पूरा किया। यहाँ कुछ संक्षिप्त विवरण देखिए :

(1) काबा परमेश्वर का भवन है क्योंकि सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने आदम को आदेश दिया कि वह उसके लिए बनाए, और अब्राहम ने फिर उसको दुबारा बनाया।

(2) एक मुसलमान की कब्र इस तरह खो दी जाए कि जब उसका शव उसमें रखा जाए तो उसका मुंह मक्का की तरफ होना चाहिए।

(3) मक्का इतना पवित्र नगर है कि कोई व्यक्ति इस नगर की ओर मुंह करके मल विसर्जन न करे। जो ऐसा करता है वह काफ़िर (गैर- ईमानवाला) है।

(4) अल्लाह अरबी भाषा बोलता है, और कुरान भी अरबी भाषा में हैं, जो कि एक बहुत मुश्किल भाषा है। परमेश्वर का आशीष पाने के लिए सभी मुसलमान इसे सीखें। जरा विचारिए! कि अल्लाह अरेबिया का कितना पक्षपाती है।

(5) हदीस नं. 5751 (मिश्कत, खंड. 3) में पैगम्बर मुहम्मद का कथन दिया है कि *''अरेबिया को तीन कारणों से सम्मान दो क्योंकि : (1) मैं एक अरबी हूँ; (2) पवित्र कुरान अरबी भाषा में है, और (3) जन्नत के रहने वालों की बोली भी अरबी होगी।''*

(6) काबा अल्लाह के आशीषों का केन्द्र है क्योंकि यहाँ पर ही एक सौ बीस 'दैवी आशीर्ष वचन व मंगल कामनाएं' प्रतिदिन उतरती हैं, और फिर वे सारी दुनियों में भेजी जाती हैं!

(7) इब्ने माजाह नामक लेखक हदीस न. 1463 में बताता है-कि मदीना की मस्जिद में की गई नमाज़ किन्हीं दूसरी मस्जिदों में की गई नमाजों की अपेक्षा एक-सौ गुनी से अधिक पुण्यकारी होती है, और काबा में की गई नमाज़ और किन्हीं मस्जिदों में की गई नमाज़ों से एक सौ हजार यानी एक लाख गुनी अधिक फलदायक होती है।

(8) यहाँ तक कि अरेबिया के कबरिस्तान जिन्हें 'जन्नत-उल-मुअल्ला' और 'जन्नत-उल-बकी' कहते हैं, सबसे पवित्र हैं। एक हदीस के अनुसार, वे आसमान के रहनेवालों को वैसे ही चमकदार दिखाई देते हैं जैसे कि पृथ्वी के रहने वालों को सूरज और चांद दिखाई देते हैं। जो लोग वहाँ दफ़नाए जाते हैं वे, बिना किसी रोक-टोक के सीधे जन्नत को जाएंगे और उनमें से प्रत्येक को सत्तर हजार लोगों की (आख़िरत के दिन) मध्यस्थता करने का अधिकार मिलेगा।

(9) इस विषय में नीचे लिखी आयत को भी पढ़े : *"ओ मुहम्मद! कह दो : कि यदि तुम अल्लाह से प्रेम करते हो तो मेरा अनुसरण करो; अल्लाह तुम से प्रेम करने लगेगा और तुम्हारे पापों को क्षमा कर देगा।" (3 : 31, पृ. 190)*

जब इसके साथ उपरोक्त हदीस 5751 को पढ़ा जाए तो यही निष्कर्ष निकलता है कि एक गैर-अरबी को मुसलमान होने और अल्लाह का प्यार, और पापों से क्षमा पाने के लिए उसे एक अरबी की भांति रहना होगा।

(10) यह इस्लाम का एक मुख्य स्तम्भ है कि प्रत्येक मुसलमान, को चाहे वह कहीं भी रहता हो, यदि उसके पास साधन हों तो उसे कम-से-कम जीवन में एक बार हज यात्रा के लिए मक्का आना चाहिए। सारे विश्वभर से लगभग बीस लाख से अधिक मुसलमान प्रति वर्ष हज्ज करने मक्का आते हैं, और लगभग इतने ही लोग वर्ष भर में 'उमरा' करने के लिए वहाँ आते हैं। इन यात्राओं से अरबों को इतने धन की आमदनी होती है कि अपनी आबादी की दृष्टि से, वे साल भर पश्चिमी देशों के रहन-सहन के समान आसानी से रह सकते हैं।

अति प्राचीन काल से ही हज्ज यात्रा अरबी संस्कृति का एक अंग रही है। यह मूर्ति पूजा के भारतीय सिद्धान्तों जैसे त्रिमूर्ति, शैव सम्प्रदाय, स्थानीय पाखंडों और ग्रीक परम्पराओं के आधार पर विकसित हुई है। आज तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला है जिससे सिद्ध हो सके कि 'काबा' का मन्दिर कभी भी अब्राहम ने दुबारा बनवाया था। मुहम्मद के प्रारम्भिक समय में भी, यह मूर्ति पूजा की केन्द्र थी

जिसमें 'हज्र-ए-अस्वद' को चूमने की प्राचीन प्रथा थी, जिसको हज़रत मुहम्मद ने बढ़ावा दिया क्योंकि उनका अरबी राष्ट्रीय संस्कृति से घना सम्बंध था। इस बहुदेवतावादी (पैग़न) रिवाज़ ने, जो कि अरबों को भी अच्छी लगी, निश्चय ही मुहम्मद को अपने अनुयायी बढ़ाने में सहायता की है। अरेबिया में हज्ज करने की प्रथा, इस्लाम से भी पहले से चली आ रही है। यह आज भी पहले की तरह मूर्ति पूजा का प्रतीक है। लोग 'काबा' के काले-पत्थर को चूमते है, और इसकी सात परिक्रमा करते हैं जो कि काफ़िर यमनों की प्रथा से जुड़े 'सितारों की परिक्रमा' का प्रतीक है।

जो सच्चाई हज्ज परम्परा के साथ है, वैसी ही सच्चाई स्वयं अल्लाह के नाम के साथ है। यह नाम 'काबा' की मुख्य मूर्ति का नाम था, जो कि मुहम्मद के कुरेश कबीले से सम्बन्धित था। पैगम्बर के पिता का नाम अब्द अल्लाह यानी अल्लाह का सेवक था। यही कारण है कि पैगम्बर ने उस नाम को अपने परमेश्वर के लिए बनाए रखा क्योंकि यह नाम कुरेशों को भी आकर्षित करता था। इसके अलावा, अल्लाह एक अरबी देवता था और प्रत्येक अरबी आदमी किसी भी कबीले या मत के क्यों न हो, इसी नाम से अपने देवता की पूजा करता था।

इन विभिन्न तरीकों से, मुहम्मद ने लोगों के मन में मक्का के प्रति उससे कहीं अधिक आस्था पैदा कर दी जो कि यहूदी कभी भी जैरुसलेम के मन्दिर के प्रति कर पाते और इन तरीकों से पवित्रता की सुगंध द्वारा मक्का के दैवीपन का भाव, अरबों के मन में समा गया जो कि हदीसों के वचनों ने सुस्पष्ट कर दिया गया कि सब मुसलमानों को अरेबिया को सम्मान देना चाहिए और जो इसमें हिचकिचाएंगे, वे पैगम्बर की मध्यस्थता से मिलनेवाले वरदानों से वंचित तरह जाएंगे और नरक में सड़ेंगे।

अरबवाद के इस मास्टर प्लान में, पैगम्बर मुहम्मद ने स्वयं अपने को सदैव सबसे ऊपर रखा, हालांकि वे अपने को नश्वर और अल्लाह का सेवक ही कहते रहे। जबकि अल्लाह अपने फरिश्तों सहित मुहम्मद के लिए शान्ति की आराधना करता दिखाई देता है।

इसलिए पैगम्बर मुहम्मद की पूजा और आज्ञा पालन ही सच्चा इस्लाम है, और मुहम्मद के लिए अल्लाह केवल शिष्ट वचनोक्ति मात्र है जो कि उस पर इतनी मजबूत पकड़ रखता है कि मुहम्मद के बिना केवल अल्लाह में विश्वास करने का कोई अर्थ नहीं है।

इस्लाम के पालन करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि मुहम्मद को जीवन के सभी कार्यों को आदर्श माना जाए : *''निश्चय ही तुम लोगों के लिए अल्लाह के*

'रसूल' में एक उत्तम आदर्श था। उस व्यक्ति के लिए जो अल्लाह और 'अन्तिम दिन' की आशा रखता हो।" (33.21, पृ. 748)

इसका अर्थ यह हुआ कि जीवन के प्रत्येक छोटे-से-छोटे आचार-विचार में मुहम्मद के अनुसार जीना-यानी जैसा मुहम्मद ने सोचा, अनुभव किया और काम किया वैसे करना, जैसी मुहम्मद की आदतें थी वैसे ही आदतें, पसन्दें व नापसन्दें विकसित करना और मुहम्मद की तरह ही खाना, पीना, चलना-फिरना, सोना जगना और यहाँ तक कि बाहर से भी स्वयं को मुहम्मद जैसा ही दिखना।

जब हम इस विषय पर और गम्भीरता से विचार करते हैं तो इसका यही अर्थ निकलता है कि 'मुहम्मद' के जीवन को आचरण का आदर्श मानना ही इस्लाम की सच्ची शक्ति है जो कि इस्लाम को एक स्वचालित अरब साम्राज्यवाद का रूप देती है क्योंकि इस प्रकार की स्वीकारोक्ति एक मुसलमान को मुहम्मद के सिद्धान्त और उनके कार्यकलापों को सच्चाई के साथ अपनाने की प्रेरणा देती है।

इस्लाम का मूल सिद्धान्त है *'बांटो और राज करो।'* यह मानव समाज को सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से पूरी तरह बांट देता है। यह मनुष्यों को मौमिन (मुसलमान) और काफ़िर (गैर-मुसलमान) के बीच स्थायी रूप से बांट कर एक स्वचालित मशीन की भांति चलाना चाहता है। कुरान की आयत (58 : 19-20, पृ. 10-19) में साफ़ तौर पर गैर-मुसलमानों को *'शैतान की पार्टी'* का कहा गया है और अल्लाह और मुहम्मद के अनुयायियों को *'अल्लाह की पार्टी'* कहा गया है।

इसके अलावा कुरान 'शैतान की पार्टी वालों' को 'त्यागने योग्य' कहता है, और घोषणा करता है कि :

'वे निश्चय ही हारने वाले है।' लेकिन 'ईश्वरीय पार्टी' के बारे में कुरान कहती है कि "तुम ऐसा कहीं नहीं पाओगे कि वे लोग जो अल्लाह और अन्तिम दिन पर 'ईमान' रखते है, ऐसे लोगों से मित्रता रखते हों जो अल्लाह और उसके 'रसूल' का विरोध करें, भले ही वे उनके बाप या उनके बेटे या उनके भाई हों या उनके घराने के लोग ही क्यों न हों।......(अल्लाह) उन्हें ऐसे उद्यानों में दाखिल करेगा जिनमें नहरें वह रही होंगी, जहाँ वे सदैव रहेंगे। अल्लाह उनसे राज़ी हुआ और वे उससे राज़ी हुए। ये 'अल्लाह की पार्टी' (जत्थे) वाले हैं। सुन लो अल्लाह का जत्था ही सफलता पाने वाला है।" (58 : 22 पृ. 1019)

उपरोक्त आयतों को सुस्पष्ट समझने के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं कि :

(1) 'शैतान की पार्टी' के सदस्य निश्चय ही हारने वाले हैं। वे त्यागने योग्य हैं क्योंकि वे अल्लाह और मुहम्मद को नहीं मानते हैं।

(2) 'ईश्वरीय पार्टी' के सदस्य वे लोग हैं जो कि अल्लाह और मुहम्मद के विरोधियों को प्यार नहीं करते हैं, चाहे वे भले ही उनके मां, बाप, बेटे, भाई या उनके राष्ट्र (क्लान) के ही क्यों न हो। ये ही वे लोग हैं जो इस जीवन में फलेंगे-फूलेंगे और उन्हें ही इस जीवन के बाद जन्नत मिलेगी।

यह मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच एक स्थायी विभाजन है जो कि हमेशा चलनेवाले सामाजिक और राजनैतिक संघर्ष पर आधारित है जिसमें कि मुसलमानों की आखिरी जीत होगी। फिर भी एक व्यक्ति 'ईश्वरीय पार्टी' का तब तक सदस्य नहीं हो सकता है जब तक कि वह अपने मां-बाप, बेटे-बेटियों, भाई-बहिनों एवं देशवासियों जिन्होंने इस्लाम स्वीकार नहीं किया है, से नाता न तोड़े।

यह उन सब गैर-अरब देशों, जहाँ कि इस्लाम, तलवार, प्रचार अथवा आव्रजन (इम्मीग्रेशन) से पहुँच चुका है, के लिए एक अभिशाप है। इन देशों में इस्लाम में सभी धर्मान्तरितों का कर्त्तव्य हो जाता है कि वे अरबी संस्कृति की सभी बातों को मानें यानी अपनी सभी राष्ट्रीय परम्पराओं को अरबी संस्कृति के समक्ष नत मस्तक कर दें; इस्लामी कानून अपनाएं, अरबी भाषा सीखें, और अरबी तौर-तरीके सीखें, मक्का और अरबी लोगों को सम्मानित करें; मुहम्मद को "आचरण का आदर्श" मानें क्योंकि अरबी होने के कारण उसने उन सभी अरबी बातों को मानने को विवश किया जो कि उसे प्यारी थी। इससे भी ज्यादा अपमानजनक तो यह है कि उन्हें अपनी संस्कृति और मातृभूमि से घृणा करनी चाहिए, वह भी इतनी अधिक कि वह देश अन्त में एक दारुल-हरब यानी एक जीवित युद्ध स्थल बन जाए।

व्यवहार में इसका अर्थ यह हुआ कि वे अपने ही देश में एक स्वदेश विरोधी मोर्चा खोल दें, और अपने ही देशवासियों से लड़ें जब तक कि वे शेष सभी गैर-मुसलमान अरबी सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के सामने, इस्लाम कबूल कर, घुटने न टेक दें। और केवल इसके बाद ही वह देश दारुल-इस्लाम माना जाता है यानी शान्ति का देश वर्ना वह देश युद्ध स्थल (दारु-उल हरब) ही बना रहता है, जहाँ कि गैर-मुसलमानों की हत्या और बलात्कार श्रेष्ठ समझा जाता है, तथा झूठ बोलना, धोखा देना और बेईमानी करना आदि बुराइयाँ आवश्यक समझी जातीं हैं जो इस प्रकार वे मुस्लिम नैतिकता के अंग बन जाते हैं।

मातृभूमि! कौन-सी मातृभूमि! वह, अपने जन्म स्थान का देश जहाँ कि कोई व्यक्ति बढ़ता है, रहता है और अन्त में वहीं अन्तिम शरण लेता है। मगर अरबी संस्कृति के प्रभाव के जादू में आकर वही देश एक सबसे बड़ा मज़ाक बन कर रह जाता है। ये गैर-अरबी मुसलमान अपने ही मातृभूमि और संस्कृति के प्रति एक विशेष प्रकार का तिरस्कार भाव विकसित कर लेते हैं (मुस्लिम भाई-चारे में

विश्वास के बहाने) जो कि एक मृगमरीचिका, भ्रमित धारणा और मन की एक विकृत दशा है।

इस बात की सच्चाई को परखने के लिए, शक्तिशाली फारोह के देश, मिश्र की हालत देखिए, जिसकी सामाजिक भव्यता, तीन हजार वर्षों तक रही। यह महान कला, विज्ञान, संस्कृति और सात्विक गुणों का देश, इस्लाम के आते ही नष्ट हो गया। अब वहाँ कोई मिश्रवासी नहीं है। वे सब अरबी हो गए हैं।

अब ज़रा ईरान के इतिहास के पृष्ठों को भी देखो। उनका शानदार राज्य अनेक शताब्दियों तक चला। उनका साम्राज्य इतना विशाल था, कि पिछले तीन-सौ साले पहले तक जब ब्रिटिश अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर आए, उनके समान न थे। उनकी महानता के विषय में बहुत कुछ कहा जा सकता है कि उन्होंने रोमन कानून, ग्रीक संस्कृति और एशियायी परम्पराओं को बढ़ाया। उन्होंने जरातुष्ट्रा जैसे आध्यात्मिक नेताओं को जन्म दिया जिनके विचारों ने यहूदी मत और ईसाइयत को प्रभावित किया। लेकिन जब इस्लाम ने परसिया पर हमला किया, तो अरबों ने सुविचारित लूट व्यवस्था द्वारा वहाँ की समस्त सम्पत्ति हथियाली जिनमें, वहाँ की सुन्दर, सुकोमल महिलाएं तथा ईरानी कवियों का स्पन्दन जिनकी प्रशंसाओं, प्रेरणाओं और गुण गाथाएं ने शिया और यूरोप की शौर्य परम्पराओं में विशेष योगदान दिया, आदि भी सम्मिलित थे।

इसके बाद वहाँ ईरान नहीं रहा। इसकी समस्त राजनैतिक और सांस्कृतिक कीर्ति स्वयं ईरानियों ने ही नष्ट कर दी, जो कि अरबीकरण के फलस्वरूप स्वयं अपनी संस्कृति, जिसने उन्हें कभी विश्व में शीषस्थ बनाया था, को घृणा करने लगे। वे, ईरानी होने की जगह, मुसलमान बनना चाहते थे, ताकि, जैसा कुरान में लिखा है, वे सुन्दरी कुंवारियों, सुघड़ लड़कों और मदभरी शराब पाने के हकदार बन सकें। स्वयं अपने पैगम्बरों (ज़रातुष्ट्रा और मानी आदि) पर दोषारोपण करके, उन्होंने एक नई माइथोलोजी रची जो कि शियावाद कहलाता है जो कि पूर्णतया अरब विजेताओं या हीरों, विशेष कर पैगम्बर मुहम्मद, के नज़दीकी रिश्तेदारों के नक्शे-कदम पर आधारित है। तभी से ईरानियों की तेजस्विता समाप्त हो गई। ईरान के अपने वर्चस्व के प्रति घृणा ने उसकी महत्ता को नष्ट कर दिया जिसे कि अपनी राष्ट्रीय परम्पराएं ही दिलवा सकती हैं। वे अब वे ईरानी नहीं रहे, जो पहले कभी थे। उन्हें कोई प्रेरणा नहीं देता, जब तक कि वह अरब चाटुकारिता पर आधारित न हो। वर्तमान इमाम खुमैनी की इस्लामी क्रान्ति इस सच्चाई का प्रमाण है।

भारत, इस्लाम का एक दूसरा बड़ा शिकार ग्रस्त देश है। जिस दिन मुहम्मद बिन कासिम, सिंध में एक विजेता के रूप में घुसा था, वह भारत के इतिहास में,

सबसे अधिक अशुभ, विनाशकारी और घृणात्मक क्षण था, जिसकी पवित्र, स्वाभिमानपूर्ण और शक्तिशाली परम्पराएं विश्व संस्कृति के लिए प्रकाश स्तम्भ के रूप में रहीं हैं। भारतीय, जो अहिंसा की गरिमा के पुजारी रहे हैं, अरब आक्रमणकारियों के अत्याचारों को देख कर आश्चर्यचकित रह गए जो उन्होंने सम्पत्ति लूटने और स्थानीय महिलाओं के शील हरण करने में दिखाए। फिर भी बिडम्बना यह कि यह सब उन्होंने सबसे अधिक दयालु और न्यायकारी अल्लाह के नाम पर किए जो कि इन अत्याचारों को उचित कार्य मानता है तथा जो 'अविश्वासियों' को सताने के लिए किए जाते हैं। तब यह देश, जो इतिहास के उतार-चढ़ावों से बेखर, अपने लम्बे काल की समृद्धिता और प्रचुरता से अनभ्यस्ता था, इस्लाम के आक्रामकों द्वारा आकर्षित हुआ जो कि उसकी सम्पत्ति लूटने, अपनी पुत्रियों को बेइज्जत करने और उसके स्वाभिमान को कुचलना चाहते थे। भारत ने, अहिंसा जैसे आध्यात्मिक भ्रमों और सुख सुविधाओं को भोगने के बावजूद, डटकर संघर्ष किया।

यह ध्यान रखना चाहिए कि विजेताओं के रूप में, जो हानि इन बलात्कारियों, लुटेरों और हत्यारों ने की, वह किसी प्रकार भूली भी जा सकती है; लेकिन इस्लाम की विचारधारा से जो घाव उसे लगे हैं, वे मन के झरोखों से निकालना असम्भव है क्योंकि यह घाव सूखने की जगह एक असाध्य नासूर के रूप में बदल गया है। हालांकि 95 प्रतिशत मुसलमान भारत के मूल निवासी हिन्दुओं के वंशज हैं, और शेष 5 प्रतिशत भी सैकड़ों वर्षों से भारत के स्थायी निवासी होने के कारण भारतीय हैं। मगर वे सभी अपने को अलग मुस्लिम राष्ट्र मानते हैं क्योंकि वे जो कि इस बात में विश्वास करते हैं कि उनकी मातृभूमि तो दारु-उल-हरब है। इसी ही द्विराष्ट्र सिद्धान्त के आधार पर भारत का विभाजन हुआ था। जो काम संघर्ष से अरबी आक्रमणकारी लोग स्वयं न कर सके उसी काम को अरेबिया के *"बांटो और राज करो"* के सिद्धान्त ने उनके लिए कर दिखाया है। क्योंकि इस्लाम एक स्वचालित अरब-साम्राज्यवाद ही है इसके लिए किसी तलवार तथा बन्दूक की जरूरत नहीं हैं। इसकी जादू भरी अपील, मानसिक एवं भावनात्मक दृष्टि से मनुष्य को गिराकर बन्दर के स्तर पर ला देती है, और जो असम्भव को सम्भव बनाने के लिए शक्ति का काम करती है।

यह बात याद रखनी चाहिए कि इस्लाम धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक संघर्षों (जिहाद) का एक स्थायी कार्यक्रम है जो साफ़ तौर पर यह घोषणा करता है :

'किताबवाले' जो कि न अल्लाह पर 'ईमान' लाते हैं और न 'अन्तिम दिन' पर और न उसे 'हराम' करते हैं जिसे अल्लाह और 'रसूल' ने 'हराम' ठहराया है, और

न 'सच्चे दीन' को अपना 'दीन' बनाते हैं उनसे लड़ो, यहाँ तक कि वे अप्रतिष्ठित होकर अपने हाथ से जज़िया देने लगे।'' (9 : 29 पृ. 372)

गैर-मुस्लिमों पर विजय पाने के उद्देश्य से युद्ध के लिए तत्परता इस्लाम की एक बहुत बड़ी प्रेरक शक्ति रही है। लेकिन यह शक्ति धीरे-धीरे समाप्त हो जाती यदि कोई दूसरा पैगम्बर आने को होता। केवल मूर्ख ही यह सोच सकते हैं कि पैगम्बर मुहम्मद इतना समझदार नहीं था जो इस कमी के बारे में सावधान नहीं रहता। उसने इस कमी को केवल देखा ही नहीं बल्कि इसे पूरा करने के लिए अपनी असाधारण तत्परता से कार्य किया, और स्वयं को ही आखिरी पैगम्बर घोषित कर दिया यानी उसके बाद अब कोई दूसरा पैगम्बर नहीं होगा। इसीलिए कोई भी व्यक्ति उसके युद्ध (जिहाद) के कानून को बदल नहीं सकेगा, जो कि अपनी ही मातृभूमि के प्रति घृणा पर आधारित है जब तक कि वह देश दारू-उल इस्लाम न हो जाए। सार की बात यह है कि यदि कोई भी राष्ट्र इस्लाम को नहीं स्वीकारता है तो वह यातना, तबाही और अपमान का सामना कर सकता है; और यदि वह इस्लाम स्वीकार कर लेता है तो वह अरेबिया का सांस्कृतिक गुलाम हो जाता है क्योंकि इस हालत में यदि वह मुहम्मद को अपने आचरण का आदर्श बनाना चाहता है और उसे मुहम्मद के तौर-तरीके अपनाने होते हैं जिसकी प्रत्येक सोच अरेबिया की कीर्ति के लिए समर्पित थी। अरबी साम्राज्य स्थापित करने का यह कितना अद्वितीय तरीका है!

फिर भी मुझे यह बताना चाहिए था कि ''आखिरी पैगम्बरपन'' का सिद्धान्त, कुरान के मूल भूत सिद्धान्तों के विरुद्ध है, जो दावा करता है कि अल्लाह पैगम्बरों को मानव समाज के मार्ग दर्शन के लिए भेजता है। पाठक स्वयं देखें : 'तुम्हारे पास मेरी ओर से मार्ग दर्शन पहुंचेगा।' (2 : 28)

यह अल्लाह ही है जो कि आदम से बात कर रहा है, जिसे कि अपनी असभ्यता के कारण स्वर्ग से निकाला गया था। इसके लिए इलहाम के सिद्धान्त को स्थापित करने के लिए एक पैगम्बर की जरूरत होती है। यदि लोगों को मुहम्मद से पहले भी विभिन्न पैगम्बरों द्वारा मार्ग दर्शन की जरूरत थी, तो फिर वे मुहम्मद के बाद उन मार्ग दर्शक वचनों से वंचित क्यों रहें? जबकि मुहम्मद के अनुयायियों ने खुद ही अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए उसके वचनों की उपेक्षा की है। इसके अलावा, अल्लाह हमेशा-हमेशा के लिए प्रारम्भ में एक ही पैगम्बर को क्यों नहीं भेज सका था ताकि लोग विभिन्न पैगम्बरों द्वारा बताए धर्मों से उत्पन्न पक्षपात और लड़ाइयों से बच जाते? यदि परमात्मा है तो वह इस प्रकार की करतूत के बारे में सोच भी नहीं सकता है जो कि स्वयं उसके रचे प्राणियों का संहारक है। *सम्मानीय बने रहने के लिए परमेश्वर को भी आदरणीय तरीकों से ही व्यवहार करना चाहिए।*

क्योंकि प्रत्येक संस्कृति की अपनी परम्पराएं होती हैं, अतः पैगम्बरपन, मध्यपूर्वी संस्कृति का एक अंग होने के कारण उनके लिए मान्य है। लेकिन उसे अन्य राष्ट्रों पर थोपना, जैसा कि इस्लाम अपना प्रभुत्व जमाने के लिए करता है, पूर्णतया अवांछनीय और आक्रामक है। इसके विपरीत मोज़ाइक पैगम्बरपन हानिरहित है क्योंकि यहूदी, प्रचार, यातना और वायदों के आधार पर धर्मान्तरण नहीं करते हैं।

इससे भी बुरा इस्लामी चिन्तन है जो कि विश्वास का अंग और मोक्ष के साधन के रूप में यहूदियों के विनाश को प्रचारित करता है, इससे यहूदियों ओर मुसलमानों के बीच अमानवीय शत्रुता पैदा हो गई है जिससे मानव जाति के अस्तित्व को ही खतरा हो गया है। इसका हम अगले अध्याय में विचार करेंगे।

■■

अध्याय आठ

पैगम्बरों का टकराव

पैगम्बरपन मध्यपूर्वी क्षेत्रों की उत्पत्ति है। यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा एक मनुष्य-पैगम्बर ईश्वर के नाम पर, अन्य मनुष्यों के ऊपर सांसारिक और आध्यात्मिक अधिकार जमाना चाहता है। इसमें परमेश्वर नगण्य है जो कि पैगम्बर की व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति का एकमात्र साधन है।

पैगम्बर न केवल एक दैवी स्रोत है, बल्कि यह मानव जाति को समाप्त करने का सम्भावित साधन भी हो सकता है। इस तथ्य की पुष्टि जैरुसलेम से होती है जो कि पैगम्बरीय ईर्ष्याओं के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय विस्फोटक (डाइनामाइट) बन चुका है।

मनुष्य को इसका अधिकार है कि वह एक देवता, बहुत से देवताओं या फिर किसी भी देवता में बिल्कुल विश्वास न करे। यह मौलिक अधिकार उसे उसकी स्वतंत्र इच्छा ने दिया हुआ है, जो कि एक जीवित और मृत प्राणी में सच्चा भेद करता है। विशाल सूर्य, जीवन का स्रोत होने के बावजूद अभी भी प्राण हीन है क्योंकि इसकी प्रत्येक गति पहले से ही निर्धारित है, और इसीलिए वह यांत्रिक रूप से कार्य करता रहता है। इसके विपरीत, सबसे छोटा जीवाणु, एक प्रोटोजुआ, जिसका आकार हर क्षण बदलता रहता है, अपनी इच्छानुसार चलने-फिरने की क्षमता रखने के कारण एक जीवित प्राणी है।

पैगम्बरपन के इस दावे का आधार पूर्णतया जांच-पड़ताल करने योग्य नहीं है, कि ईश्वर ने किसी मनुष्य को "पैगम्बर" नियुक्त किया है जो कि उसकी तरफ से उसका प्रतिनिधि बनकर लोगों को उसकी आज्ञापालन के लिए समझावे कि यह अलौकिक प्राणी, पूर्ण है, सृष्टिकर्ता, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और पूर्ण स्वतंत्र है। यह अवधारणा अनेक कारणों से ईश्वर के प्रति अत्यन्त अपमानपूर्ण है।

(1) इन सब गुणों के कारण, सर्व पूर्ण-परमेश्वर अपूर्ण मनुष्य पैगम्बर पर निर्भर नहीं रह सकता है। इसीलिए पैगम्बरपन का तरीका अपने स्वभाव के कारण त्रुटिपूर्ण, भ्रामक और विभ्रान्त करनेवाला है। पुन: इसके अत्यन्त सांस्कृतिक और धार्मिक प्रभाव होने के कारण पैगम्बरपन के सिद्धान्त और विभिन्नता को आसानी से जांच पड़ताल करने योग्य होना चाहिए। क्योंकि ऐसा नहीं हो सकता है, इसलिए यह परेशानी का कारण हो सकता है जिसे कि हम सामाजिक तनाव के रूप में देखते हैं।

(2) मनुष्य के पास न केवल स्वतंत्र इच्छा शक्ति है बल्कि वह बुद्धिमत्ता का

भी सुख भोगता है। इसके कारण वह अत्यन्त श्रेष्ठ, आकर्षक और चमत्कारी हो जाता है। इसीलिए वह अपने लिए सही मार्ग ढूंढ़ने के योग्य हो जाता है। एक पैगम्बर, जो कि सैकड़ों वर्ष पहले हुआ था, जो गधों और खच्चरों पर चढ़ा हो, उसे उस मनुष्य के मार्ग–दर्शन का क्षमता नहीं है जिसने अपने परिश्रम से उन साधनों को आविष्कृत किया है जिनके कारण वह आकाश–यात्री हो गया है। आज यदि मनुष्य को परमेश्वर के मार्ग–दर्शन की नितान्त आवश्यकता होती तो उसने मनुष्य को तीव्र बुद्धि और अनुवेषक प्रतिभा जैसी शक्तियां नहीं दी होतीं। इसके अलावा सर्व स्वतंत्र और सम्पूर्ण होने के नाते परमेश्वर ने मनुष्य को कुछ भिन्न ऐसा बनाया होता जिससे वह ग़लती नहीं करता। इससे परमेश्वर, उस समस्त अपमान से बच जाता जो कि उसे एक पैगम्बर नामक अपूर्ण मनुष्य पर निर्भर होने और उससे उत्पन्न होने वाली भूलों के फलस्वरूप पैदा होता है।

(3) पैगम्बरपन की अवधारणा, जो कि विवेकशीलता के ठीक उल्टी है, एक विवेकशील मनुष्य को धार्मिक विश्वास के आधार पर यांत्रिक रोबोट बना देती है, इस प्रकार कोई बात सही या ग़लत हो जाती है, इसलिए नहीं कि वैसा अनुभव या बुद्धि कहती है, बल्कि इसलिए कि ऐसा पैगम्बर के माध्यम से परमेश्वर कहता है।

(4) मार्ग दर्शन के नाम पर, ईश्वर की सबसे बड़ी अभिलाषा यह होती है कि मनुष्य उस सर्वशक्तिमान के सामने, विभिन्न क्रियाओं के द्वारा, जिसे पूजा विधि कहते हैं, अपने को विनीत करे। मगर वह जो सर्वशक्तिमान और सर्व–स्वतंत्र है, वह दिखावे का भूखा नहीं हो सकता। चापलूसी की आकांक्षा कोई सद्‌गुण नहीं, बल्कि दुर्गुण है। यह मानव स्वभाव है जो कि दूसरों से अपना सम्मान व यश पाना चाहता है। यह मनुष्य के हावी होने की चाह का एक लक्षण है, जो कि अन्य साथी लोगों की आजादी को हड़पने की भावना से प्रेरित होता है, ताकि वे अन्यों की प्रशंसा, स्तुतियों और दयनीयता के भावों से महान दिखाई दे सकें। परमेश्वर, जो कि परिभाषा से सर्वशक्तिमान और सर्वस्वतंत्र है, मनुष्य की इन कमजोरियों से पूर्णतया मुक्त है।

(5) यह तो मनुष्य–पैगम्बर ही है जो कि इस्लाम के बहाने दूसरों पर अपनी हावी होने की चाह को पूरा करने का प्रयास करता है। वह अपने को परमेश्वर का सेवक होने का दावा करता है। लेकिन अपने साथियों द्वारा स्वयं को परमेश्वर मानने को उत्साहित करता है और इस प्रकार परमेश्वर स्वयं ही पृष्ठभूमि में चला जाता है, तथा सारा मैदान पैगम्बर के लिए खुला छोड़ देता है जो कि सभी सांसारिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति का माध्यम बन जाता है।

वास्तव में पैगम्बरपन, परमेश्वरपन की अवधारणा का सबसे बड़ा अपमान है।

यदि आप कुरान या बाइबिल पढ़ें तो आप पाएंगें कि परमेश्वर एक ऐसा व्यक्तित्व है जो कि अपनी पूजा करवाना चाहता है। उसकी मानसिकता इतनी बचपनी और अस्थायी है कि यदि कोई मनुष्य उसकी पूजा करके स्वयं को अपमानित करता है, तो वह अत्यन्त प्रसन्न होता है मानो जैसे कोई विश्व में सबसे ऊंचे क्षितिज पर पहुंच चुका हो। लेकिन यदि वह उसका तिरस्कार करता है तो वह पानी के बाहर तड़पती हुई मछली जैसा बैचेन हो जाता है। आखिर वह किस प्रकार का परमेश्वर है जिसके सुख और दुख मनुष्य के उसके प्रति व्यवहार पर पूर्णतया निर्भर करते हैं ?

यदि पैगम्बरवाद एक सही अवधारणा होती तो यह मनुष्य के लिए सबसे बड़ा सम्मान होता जो वह पा सकता था। उस स्थिति में उसने अथाह परिश्रम किया होता और सर्वशक्तिमान परमेश्वर से उसे पा लेता। मगर दुर्भाग्यवश स्थिति इससे बिल्कुल उल्टी है। यह परमेश्वर ही है जो कि पूजा पाने को इतना व्याकुल है कि वह अपनी दैवी विलक्षणता को मनुष्य पर धमकियों और हिंसा द्वारा थोपना चाहता है जो कि उसे स्वीकारने को तैयार नहीं है। सच्चाई तो यह है, कि व्यक्ति यह सोचने को विवश हो जाता है कि परमेश्वर किसी पैगम्बर को ढूँढ़ने को अति व्याकुल है और मनुष्य ने उसे यह सम्मान दे दिया मानो कि वह परमेश्वर पर कोई उपकार कर रहा हो। कितनी पवित्र निन्दा है यह!

पैगम्बरपन के सिद्धान्त के बारे में सच्चाई यह है कि जो मनुष्य पैगम्बर बनना चाहता है, वह इस बात की कोशिश करता है कि उसने अपनी बिना मर्जी के भी, ईश्वरीय आज्ञा से, पृथ्वी पर उसका प्रतिनिधि बनना स्वीकार कर लिया है। क्योंकि परमेश्वर को देखा न जा सकने के कारण उससे सीधा सम्पर्क नहीं किया जा सकता है, वह केवल पैगम्बर के माध्यम से बोलता है जो कि दिखाई देता है, तो पैगम्बर एक मूर्ति की तरह परमेश्वर का प्रतीक हो जाता है। ईश्वर का प्रतिनिधित्व करने के कारण वह मूर्ति तथा वह पैगम्बर पवित्र समझा जाता है। पैगम्बर चाहता है कि परमेश्वर नाम मात्र का अध्यक्ष रहे ताकि वह स्वयं लोगों के ध्यान और प्रशंसा का केन्द्र बिन्दु बना रहे। अन्त में वह अपने को इतना ऊंचा उठाता है कि स्वयं परमेश्वर निरीक्षक जैसा दिखाई देता है। इस समस्त योजना में, ईश्वर को धमकाते हुए दिखाना या परोक्ष रूप में किसी मनुष्य से उसकी मर्जी के खिलाफ पैगम्बरपन के पद को स्वीकारने के लिए प्रार्थना करना, इस समस्त योजना का अभिन्न अंग है। इस बात की पुष्टि में दो प्रमाण दिए जाते है :

(अ) बाइबिलीय कहानी (एक्सोडस-3) के अनुसार, मोज़िज ने एक जलती हुई झाड़ी के बीच एक फरिश्ते को देखा जिस पर जलती हुई आग का कोई असर नहीं हो रहा था। जैसे ही वह इस चमत्कारिक दृश्य को देखकर अचम्भित हुआ,

उस झाड़ी से एक आवाज़ निकली, और कहा "मैं तुम्हारे पिता का परमेश्वर हूँ, अब्राहम का परमेश्वर हूँ, ईसाक़ का परमेश्वर हूँ तथा जैकब का परमेश्वर हूँ।"

परमेश्वर मोज़िज़ से क्या चांहता था ? वह उससे (मोज़िज़ से) चाहता था कि वह यहूदियों में उसका प्रतिनिधित्व करे जिनको वह मिश्र से बाहर निकाल कर लाया है, जहाँ वे गुलामी की अत्यन्त यातनाएं भुगत चुके थे।

सुस्पष्ट है कि मोज़िज़ पैगम्बरपन की महिमा को स्वीकारने से इसलिए कतराते प्रतीत होते हैं कि वे हकलाते हैं, उनमें वाक् चातुर्थ जो कि इस पद को चतुराई से निभाने के लिए आश्वयक है, की कमी थी। इस अनिच्छा का परिणाम था कि "परमेश्वर की नाराज़गी के बावजूद, मोज़िज़ उस समय तक पैगम्बरपन के लिए तैयार नहीं होते हैं जब तक कि परमेश्वर उनके वचनों का भाष्य और अन्य आवश्यक काम करने के लिए आरोन नामक एक लेबी को मोज़िज़ का सहायक नियुक्त नहीं कर देते हैं। क्या परमेश्वर यह काम किसी अधिक योग्य व्यक्ति को नहीं सौंप सकते थे ? फिर मोज़िज़ का होना ही आवश्यक क्यों जो कि एक मिशनरी होने की आवश्यक योग्यताएं नहीं रखता था ?

यह सिर्फ परमेश्वर की मोज़्ज़ि की कमजोरियों के बावजूद उसके के प्रति उत्कंठा दिखाती है और उसकी अपेक्षा स्वयं उसकी (मोज़िज़ की) महत्ता प्रगत करती है। वास्तव में, यह परमेश्वर से भी अधिक पैगम्बर की विशेषताओं को प्रदर्शित करने का एक रहस्यपूर्ण तरीका है। इस सच्चाई कों आप स्वयं परखें :

इस घटना की पृष्ठभूमि के रूप में, मैं कहना चाहूँगा कि प्रारम्भ में यहूदी लोग मूर्ति पूजक थे। मोज़िज़ की अनुपस्थिति में, उन्होंने एक सोने की गाय की मूर्ति बनाई और उसकी पूजा करने लगे। इसे देखकर यहूदियों के देवता, यहोवा की क्रोधाग्नि भड़क उठी और वे उन सभी को मार डालना चाहते थे :

जैसी कि परमेश्वर ने यहूदियों का हठीलापन देखा, सम्भवत: वह उनको दण्ड देने का औचित्य सिद्ध करना व उन्हें सजा देना चाहता था। इस बीच मोज़िज़ का परमेश्वर से वाक् युद्ध शुरू हो गया और मोज़िज़ ने उसे फटकारा कि ये निश्चय एक मनुष्य के ईश्वर के प्रति भी सबसे कठोर शब्द हैं, विशेष कर उसकी मौजूदगी में। यह आपसी नोंक-झोंक से यह ज्यादा प्रगट करता है कि एक पैगम्बर, परमेश्वर को निर्भीक होकर डाँट सकता है।

एक दूसरी घटना में (गिनती 14 : 11 - 20), जब यहूदियों को 'कथित-देश' नहीं मिलता है तो यहोवा नाराज़ हो जाता है। मोज़िज़ एक बार फिर परमेश्वर को डाँटता है जिससे कि व्यवहार में पैगम्बर की परमेश्वर पर श्रेष्ठता सिद्ध होती है हालांकि कहने को वह परमेश्वर का सेवक ही रहता है।

(ब) पैगम्बर मुहम्मद की कहानी, भी, सार रूप में यही है जो कि मोज़िज की है देखिए प्रमाण :

कहा जाता है कि एक दिन जब मुहम्मद सृष्टि रचना सम्बंधी रहस्यों पर ध्यान कर रहे थे, तो परमेश्वर का 'जिब्रील' नामक एक फ़रिश्ता, उसके सामने प्रगट हुआ और कहा : ''पढ़ो : अपने अल्लाह के नाम पर पढ़ो जो कि सृष्टि कर्त्ता है, जो मनुष्य की रचना करता है।

जैसाकि कुरान इस बात को प्रमाणित करती है कि यह अल्लाह का लिखा हुआ संदेश था वर्ना जिब्रील मुहम्मद को क्यों कहता कि 'पढ़ो अपने स्वामी के नाम पर।' इस आदेश के उत्तर में मुहम्मद ने कहा कि 'वह तो बिना पढ़ा लिखा है और इसलिए इस सन्देश को नहीं पढ़ सकता है।' इसको सुनकर, फरिश्ते ने उसे बालों से पकड़ा और (उसे दुबारा पढ़ने का) आदेश दिया। तीन बार कहने पर भी पैगम्बर ने पढ़ने में अपनी असमर्थता प्रगट की और तीनों बार फरिश्ते ने उसकी गला पकड़ा।

कोई भी पाठक आसानी के समझ सकता है कि मनुष्य किस प्रकार ईश्वर की प्रतिष्ठा की उपेक्षा करता है जिसने कि पैगम्बर मनवाने के लिए अनेक लड़ाइयाँ लड़ी, लेकिन यहाँ यह दावा किया जाता है कि :

(1) परमेश्वर पैगम्बर के लिए इतना उत्सुक है कि उसको मनाने के लिए हिंसा पर उतारू हो जाता है जो कि इस प्रतिष्ठा को नहीं चाहता है। यहाँ मुहम्मद अपना वर्चस्व रखता है।

(2) अल्लाह न केवल फौरन ही कोई प्रतिनिधि चाहता है बल्कि वह इस काम के लिए अत्यन्त लालायित है क्योंकि वह एक निरक्षर को चुनता है जबकि वह भलीभांति जानता है कि एक मिशनरी को शिक्षित होना चाहिए।

(3) उपरोक्त घटना अल्लाह की उपेक्षा करने की कल्पना के अलावा कुछ नहीं है। भला सर्वज्ञ परमात्मा ऐसा कैसे कर सकता है ? भला वह परमेश्वर सर्वज्ञ कैसे हो सकता है यदि वह जिब्रील को अपना लिखित समाचार लेकर मुहम्मद के पास भेजता है, जो पढ़ नहीं सकता है। मुहम्मद को पैगम्बर नियुक्त करने के काफ़ी बाद, अल्लाह अनुभव करता है कि पैगम्बर को तो पढ़ा-लिखा होना चाहिए।

''हम (अल्लाह) तुम को (ओ मुहम्मद!) पढ़ा देंगे तुम फिर कभी नहीं भूलोगे।'' (87 : 6, पृ. 1151)

स्पष्ट है कि अल्लाह ने मुहम्मद को पढ़ना-लिखना सिखाया होगा। फिर भी मुसलमान, कुरान के इस प्रमाण के बाद भी कहते हैं कि मुहम्मद बिना पढ़ा-लिखा था।

पुन: कुरान कहता है ''पढ़ो अपने 'रब' का नाम लेकर जिसने पैदा किया।'' (96 : 1, पृ. 1179)

मक्का में उतरी इस सूरा की पहली आयत होने के कारण इसे कुरान के प्रारम्भ में ही होना चाहिए। मगर यह कुरान के लगभग अन्त में पाई जाती है।

ईश्वरीय पुस्तक में इस प्रकार की उलट-फेर नहीं होनी चाहिए थी। फिर भी मुसलमान विश्वास करते हैं कि परमेश्वर के शब्द (कुरान) बदले नहीं जा सकते हैं। निश्चय ही, उलट-फेर मिलावट से भी बुरी चीज़ है। इस विषय को बढ़ाते हुए इतना और कहा जा सकता है कि मुहम्मद के जिब्रील से मिलने के सम्बंध में कई परम्पराएं फैली हुई हैं। इनमें से एक का कहना है कि मुहम्मद पैगम्बरपन का समाचार सुनकर इतना चिन्तित हुआ कि उसमें आत्म हत्या का विचार किया। फिर भी उसने उसे बीमार किया। अल्लाह किसी के लिए कितना लालायित है कि कोई उसका 'प्रवक्ता' बने।

जैसाकि पहले कहा गया है कि जब मुहम्मद कमज़ोर था तो उसने अपने को परमेश्वर का सेवक होने का दावा किया, लेकिन जैसे ही वह शक्ति सम्पन्न होता गया, तो सभी कुरानी सन्देश अल्लाह और मुहम्मद के सम्मिलित नाम से आने लगे और यहाँ तक कि मुहम्मद ने समस्त सिद्धान्तों को यह कहलवाकर उलट दिया कि ''अल्लाह और उसके फरिश्ते, पैगम्बर की पूजा करते है।''

आखिर एक पैगम्बर क्या उपदेश देता है?

वह उपदेश देता है कि परमेश्वर एक है जो कि सर्वसत्ताधारी सम्पूर्ण है। वह अपने शासन में किसी अन्य को शामिल नहीं करता है और पैगम्बर उसका नियुक्त किया हुआ एक सेवक है। इस्लामी एकेश्वरवाद का यही आधार है यानी ईश्वर एक ही है जो कि सम्पूर्ण है।

परन्तु सच्चाई यह है कि इस प्रकार के परमेश्वर का कोई महत्त्व नहीं है। उसका अस्तित्व पैगम्बर के शब्दों पर निर्भर करता है जो, जैसा हम देख चुके हैं, कि एक नश्वर है और मानवीय कमज़ोरियों से ग्रसित है। ईश्वर के उद्देश्य की पूर्ति इसमें कहीं अधिक होती यदि वह मानव जाति को अपना चेहरा अक्सर दिखाता रहता कि वह यहाँ है। क्योंकि किसी ने उसे कभी देखा नहीं है। अत: या तो उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है या वह इतना महान है कि उसे इसकी चिन्ता ही नहीं कि लोग उसके बारे में क्या कहते हैं। इससे स्पष्ट है कि यह पैगम्बर ही है जो कि परमेश्वर के समान यशस्वी होना चाहता है और ऐसा मनवाने के लिए वह दबाव डालता है कि उसके कानूनों (जिन्हें वह दैवी होने का दावा करता है) को हमेशा माना आए क्योंकि यही सबसे बड़ी प्रतिष्ठा है जो कि मनुष्य (पैगम्बर) को परमेश्वर के स्तर तक पहुँचा देती है।

इसके अलावा कानून बनाने का पूरा अधिकार मिले बगैर, पैगम्बर अपनी 'दैवी प्रभुता' को बनाए नहीं रख सकता है। इसलिए सम्पूर्णता पैगाम्बरपन का सार हो जाती है यानी एक ही परमेश्वर, एक ही पैगम्बर और एक ही कानून। किसी अन्य व्यक्ति को कानून बनाने का अधिकार नहीं हैं, जिससे कि एकेश्वरवाद के सिद्धान्त की अवज्ञा होती है तथा मानव-निर्मित कानूनों को मानना मूर्ति पूजा की श्रेणी में आता है। यही कारण है कि एकेश्वरवाद एक सम्पूर्ण राज तंत्र और तानाशाही का आधार है और जहाँ कहीं भी ईसीइयत और इस्लाम प्रभावशाली रहे हैं, इस प्रकार की तानाशाही सरकारें रही हैं। बीसवीं सदी के सबसे भयानक तानाशाह जैसे कि हिटलर, स्टालिन और मुसोलिनी ईसाई संस्कृति से आए, जो कि इस बात में इस्लाम से भिन्न नहीं हैं।

इसके विपरीत, जिन राष्ट्रों ने बहुदेवतावाद यानी एक से अधिक देवों में आस्था को अपनाया है, उनमें प्रजातंत्र मूल आधार है यानी जनता की सरकार, जो कि धर्म-प्रेरित सरकार जो कि एकेश्वरवाद या परमेश्वर अथवा पैगम्बरपन की सरकार होती है, के पूर्णतया विपरीत है। इस प्रकार प्रजातंत्रीय सरकार मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों को प्रगट करती है जबकि दूसरी हावी होने की चाह का प्रतिपादक है जो कि मानव विरोधी प्रवृत्तियों का प्रतीक है।

पिछले अध्याय में कहा गया है कि पैगम्बर अपनी अलौकिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए अपने सन्देशों का प्रचार और अपने कानूनों को बलपूर्वक लागू करता है। पुन: उसका राष्ट्र जितना शक्ति सम्पन्न होगा उतनी ही उसकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी। यही कारण है कि पैगम्बरपन राष्ट्रवाद का स्रोत बन जाता है जो कि नाजीइज्म से भी अधिक तुच्छ हो जाता है। *अरब इतिहास इस पैगम्बरीय राष्ट्रवाद के अनेक प्रमाण प्रस्तुत करता है जो कि एक मनुष्य पैगम्बर के हावी होने की असीम चाह पर आधारित होता है। ऐसे पैगम्बर को सुदृढ़ता से निर्मित राष्ट्र शक्ति की चाह होती है ताकि वह परमेश्वर के नाम पर अपना यश फैला सके क्योंकि वह अपने अनुयायियों को सांसारिक सुख व मरणोपरान्त जन्नत के सुख देगा जिसमें कि दूध, शहद और शराब की नदियाँ तथा अत्यन्त सुन्दर कुंवारिया और सुघड़ लड़के होंगे।*

ऐसे लोगों का राष्ट्रवाद सामाजिक श्रेष्ठता पर आधारित होता है क्योंकि जब तक वे स्वयं को अन्यों से अधिक सम्मानित नहीं समझेंगे तब तक वे अपने पैगम्बरपन की श्रेष्ठता को घोषित और उसे दूसरे राष्ट्रों पर न थोप सकेंगे और यही इस प्रचार का मूल उद्देश्य होता है।

अन्य राष्ट्रों के लोग जब इस्लाम को स्वीकार कर लेते हैं तो वे अरबी श्रेष्ठता

के भ्रम से संगठित हो जाते हैं और अपने को *'उम्मा'* या एक राष्ट्र कहते हैं। यह आत्म भ्रम कितना बड़ा है। यह अपने साथ धोखा इसलिए क्योंकि अरेबिया में अन्य देशों के मुसलमान विदेशी समझे जाते हैं। वे न हिजाज़ (अरेबिया) के नागरिक माने जाते हैं और न उनको वहाँ कोई जायदाद खरीदने की अनुमति है और न वे स्वतंत्र रूप से वहाँ कोई व्यापार आदि कर सकते हैं। ये सभी मुसलमान अरेबिया में पूर्णतया विदेशी होते हैं तथा वीसा, पासपोर्ट व अन्य बातों में विदेशियों के समान माने जाते हैं। यदि इस्लाम भौगोलीय सीमाओं से हट कर सभी मुसलमानों के सच्चे भाई-चारे पर आधारित होता, तो मक्का, मदीना अन्तर्राष्ट्रीय नगर होते (कम-से-कम मुसलमानों के लिए), क्योंकि पैगम्बर मुहम्मद की 'आखिरी यात्रा' के सन्देश के संदर्भों में उसके विश्व व्यापी इस्लामी आधार के अनुकूल नहीं बैठते हैं। वे अनेक हदीसों की तरह मिलावट की धोखाधड़ी प्रतीत होती हैं।

इसके अलावा, यह भी याद रखना चाहिए कि उस समय उसके सभी श्रोता लगभग अरबी थे : इसलिए उन्होंने जो कुछ भी कहा उनका सम्बन्ध केवल अरबों से था। यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है जब हम यह मानते हैं कि मुहम्मद ने इस्लाम के नाम पर अरब साम्राज्य की नींव रखी थी, न कि एक इस्लामी साम्राज्य की। स्वयं मुहम्मद के समय में भी अरेबिया सरकार में, मुख्य स्तर के कोई विदेशी मुसलमान प्रतिनिधि नहीं थे। और न उनकी अरबी राजनैतिक उन्नति के युग में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान था, और न कोई ऐसा कानूनी प्रमाण है जिससे सिद्ध हो कि किसी भी देश का मुसलमान एक अरबी राज्य का अध्यक्ष या प्रधान मंत्री हो सकता है। इसके विपरीत किसी भी जाति या रंग का कोई भी व्यक्ति विशाल ग्रीक साम्राज्य का अध्यक्ष बन सकता था। इस पर भी मुसलमान इस्लामी व्यवस्था की श्रेष्ठता का दावा करते हैं।

पाठको! आपको यह कुछ विषय परिवर्तन भले ही लगे, लेकिन यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय भाई-चारे के इस्लामी झूठे प्रचार का पर्दाफ़ाश करना अत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में इस विषय की पेचीदगी इतनी अधिक है कि सब बातों पर प्रकाश डालने के लिए अलग से एक पूरी किताब की आवश्यकता होगी परन्तु यहाँ संक्षेप में इतना कहना ही पर्याप्त होगा।

पैगम्बरीय राष्ट्रवाद जैसा कि अरबों द्वारा अपनाया जाता है, सबसे घटिया, विनाशकारी और निम्नतम श्रेणी का नस्ल वाद है और इसके परिणामस्वरूप समस्त मानव जाति का विनाश हो जाएगा। इसका कारण यह है कि ऐसे मत अपने संस्थापकों को देवत्वारोपण के कट्टरपन पर आधारित होते हैं। यदि उनका उद्देश्य इन सबसे पूरा होता हो तो सब महान अच्छा और शानदार है चाहे उसके लिए कोई

भी तरीका अपनाना पड़े। यही कारण है कि इन मतों में अच्छाई और बुराई के बीच अन्तर की कोई स्पष्ट अवधारणा नहीं है। इस सबकी पृष्ठभूमि में प्रत्येक पैगम्बर का अन्य सभी पैगम्बरों से उत्तम पैगम्बर होने का दावा छिपा होता है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा और उससे जुड़े अन्य प्रभाव, बढ़ते हैं जो कि मानव जाति के लिए भयानक, अवनत और विनाशकारी होते हैं। इस सिद्धान्त की पुष्टि में कुछ प्रमाण नीचे दिए जाते हैं :

सबसे पहले यहूदी दावे पर ही विचार करें जिसको ठीक से समझाने के लिए पिछले कुछ संदर्भों को यहाँ दुहराना होगा।

बाइबिल के ओल्ड टेस्टामेंट से कहा गया है कि : "परन्तु मैं अपनी वाचा इसहाक ही के साथ सिद्ध करूंगा जो सारह से अगले वर्ष के इसी नियुक्त समय में उत्पन्न होगा।" (उत्पत्ति 17 : 21, पृ. 13)

यहाँ यहूदियों की श्रेष्ठता कही गई है जबकि उत्पत्ति (21 : 13) में अरबों, की हीनता बताई गई है, जो कि अब्राहम की पत्नी सराह की बांदी हगर से उत्पन्न, इशामेल के वंशधर हैं।

"दासी हगर के पुत्र से भी मैं एक जाति उत्पन्न करूंगा इसलिए कि वह तेरा (इबराहीम) वंश है" (उत्पत्ति 21 : 13, पृ. 16)

यहाँ ओल्ड टेस्टामेंट में इशामेल को अब्राहम का पुत्र नहीं बल्कि उसके वीर्य से उत्पन्न माना गया है। पुनः किसी व्यक्ति को 'बांदी का पुत्र' कहना निन्दा कारक शब्द है। इससे यहूदियों की अरबों के प्रति घृणा सुस्पष्ट होती है।

इसके अलावा यहूदी राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित करने के लिए, उनका परमेश्वर यहोवा, उन्हें सभी राष्ट्रों से उत्तम घोषित करता है :

"क्योंकि तू परमेश्पर यहोवा की पवित्र प्रजा है, यहोवा ने पृथिवी भर के सब देशों के लोगों में से तुम को चुन लिया है कि तू उसकी प्रजा और निज धन ठहरे।" (व्यवस्था विवरण 7 : 6, पृ. 160)

यहूदियों को श्रेष्ठ जाति बनाने के लिए, उनके परमेश्वर ने उन्हें उन्नत होने का एक उत्तम तरीका बताया कि *'धनी बनो'*। यही कारण है कि यहूदियों ने एक पवित्र नारा अपना लिया है कि *"जितना धनी, उतना ही परमेश्वरीय'* यानी जिसके पास जितना अधिक धन होगा वह परमेश्वर के उतने ही पास होगा। यही कारण है कि बाइबिल कहती है :

"यहोवा तेरे लिए अपने आकाश रूपी उत्तम भण्डार को खोलकर तेरी भूमि पर समय पर मेंह बरसाया करेगा, और तेरे सारे कामों पर आशीष देगा, और तू बहुतेरी जातियों को उधार देगा, परन्तु किसी से तुझे उधार लेना नहीं पड़ेगा।" (28 : 12, पृ. 178)

धन शक्ति है। वास्तव में आमतौर पर एक धनी मूर्ख, एक गरीब विद्वान् से अधिक सफल सिद्ध होता है। यही यहूदी '*श्रेष्ठता*' का साधन और रहस्य है और इसी ने यहूदियों को मुहम्मद के उदय से पहले, अरबों से ऊपर उठाया था, जो कि अपनी जाति को ऊपर उठाना चाहता था।

यहूदी लोग, चार सदियों से भी अधिक समय तक, मिश्र में अत्यन्त निचले दर्जे की गुलामी को भुगत चुके थे तथा वे ठीक प्रकार से सुसंगठित नहीं थे एवं राष्ट्रीय अथवा सांस्कृतिक दृष्टि से भी वे कोई श्रेष्ठ नहीं थे। यह महान, मोज़िज़ ही था जिसने उन्हें अपने पैगम्बरपन के द्वारा एक स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप में पिरोया था।

धन कमाने के सिद्धान्त के अलावा, उसने *'जैसे को तैसा'* का सिद्धान्त बताया जिसमें करुणा और क्षमा का कोई आदर्श नहीं था, जो कि आगे चलकर यहूदी संस्कृति का मार्ग दर्शक सिद्धान्त बन गया। बाइबिल के एक्सोडस (21 : 24 - 26) में कहा गया, यह कानून बताता है कि यदि कोई तुम्हारी आंख को सताए तो तुम्हें उसकी आंख सतानी चाहिए, और यदि कोई तुम्हारे दाँत तोड़ दे तो तुम्हें उसके दांत तोड़ देना चाहिए यानी *'जैसे को तैसा'*। यही कारण है कि स्वाभाविक रूप से विनम्र यहूदी भी क्षमा में विश्वास नहीं करता है। मोज़िज़ ने यह अनुभव करते हुए कि यहूदियों का एक राष्ट्र बनाने के लिए केवल रक्त सम्बंध ही काफ़ी शक्तिशाली नहीं है। उसने उनके लिए एक स्थायी राष्ट्र बनाना चाहा। अतः उसने घोषणा की कि उनके लिए एक प्रतिज्ञाबद्ध राष्ट्र (प्रोमिज्ड लैंड) प्रतीक्षा कर रहा है जो कि कनान (पैलेस्टाइन) हुआ। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए उसने उन्हें 'बाइल्डनैस' के नाम से विख्यात कष्टदायक वातावरण में चालीस वर्ष तक प्रशिक्षित किया। जब तक कि वे एक योद्धा जाति नहीं बन गई।

परमेश्वर के इस भक्त ने विनम्रता के सभी नियमों को ताक पर रख यहूदियों को अन्य लोगों के साथ कठोर होना सिखाया। यह इतिहास की बिडम्बना है कि जिन यहूदियों ने कैनानाइटों को यातनाएँ दी, स्वयं उन्हें भी उसी प्रकार की यातनाएं, कष्ट, विनाश और निराशाएं भुगतनी पड़ीं। यह पढ़कर हैरानगी होती है जब कि कोई बाइबिल का व्यवस्था विवरण (अध्याय 3) पढ़ता हैं कि परमेश्वर की आज्ञा के फलस्वरूप यहूदियों ने कैनानाइटों पर अपनी तलवारों की नोकों से हमला कर दिया ताकि उन सब स्त्री, पुरुष, बच्चों तथा सभी प्राणधारियों समेत सभी विरोधियों का पूरी तरह से विनाश हो जावे। पुनः जोशुआ (10 : 28) में एक-एक नगर के विधिवत विनाश का विस्तृत वर्णन दिया गया है। इससे भी दर्दनाक स्थिति यह है कि लगभग तीन हजार वर्षों के बाद भी धार्मिक युद्ध व जातीय घृणा की ज्वाला आज भी दहक रही है तथा यहूदियों और पैलेस्टाइनियों के बीच युद्ध, सदैव की भांति, आज भी जारी है।

वास्तविक स्थिति को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि यहूदी भी किसी राष्ट्र की तरह एक जातीय समुदाय है और इसलिए उनके लिए सभी सम्भव साधनों से अपनी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और सुरक्षा बचाना आवश्यक है। उनका धर्म उनका व्यक्तिगत मामला हो गया है और वे अन्यों को सता कर या प्रचार द्वारा यहूदी मत को बढ़ाना नहीं चाहते हैं। ये न रोम के जैन्टाइलों का धार्मिक आधार पर विनाश करना चाहते हैं और न वे यहूदी हितों के लिए ईश्वर या मोज़िज के नाम पर विनाश, तनाव और अविश्वास के लिए कोई अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवादी वर्ग बनाना चाहते हैं। मैं यहूदी मत के विषय में यहाँ लिखने को उपेक्षा भी कर सकता था लेकिन प्रस्तुत विषय की गम्भीरता को देखते हुए मैं ऐसा न कर सका।

पैगम्बरपन हालांकि एक मध्यपूर्वी परम्परा मानी जाती है, मगर यह कोई यहूदी आविष्कार नहीं है। इसका मिश्र के अखेनाटोन (मेनहोटेप IV, 1379-362 बी.सी) से सम्बंध माना जाता है। लेकिन यहूदियों ने इस व्यवस्था को परिपूर्ण किया, और अब उसकी कीमत चुका रहे हैं। ऐसा कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता है जिससे सिद्ध हो सके कि अरबों को अपने पैगम्बर के आने की प्रतीक्षा थी। यह परम्परा तो केवल यहूदियों से ही जुड़ी हुई है। लेकिन मुहम्मद की बुद्धिमत्ता ने अपने राष्ट्र की राजनैतिक और राष्ट्रीय क्षमता को पहचाना जिसके फलस्वरूप वह स्वयं एक पैगम्बर बन गया। अरबी अल्लाह ने अपनी सम्पूर्ण बुद्धिमत्ता में यह उचित समझा कि मुहम्मद को सबसे अच्छा और आखिरी पैगम्बर घोषित कर दिया जाए, ताकि इससे न केवल किसी दूसरे को यह सम्मान सदैव के लिए नकार दिया जाए, बल्कि सभी यहूदीयों और ईसाई अपना धर्म त्याग कर मुहम्मद के अनुयायी बन जाएं। इस घटना का सबसे बुरा पहलू तो मुसलमानों का यह विश्वास है कि मुहम्मद को आखिरी और सबसे बड़ा पैगम्बर न मानना, अविश्वासियों के खिलाफ़ युद्ध का कारण है। यह तो पैगम्बरीय ईर्ष्या और उन सभी बुराइयाँ, जो कि शक्ति संघर्ष, सामाजिक तनाव और अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों के कारण पैदा हुई हैं, का सुस्पष्ट प्रमाण है। यहाँ यहूदियों और अरबों से सम्बंधित एक उदाहरण है—

पैगम्बरपन वास्तव में एक चरम सीमा के राष्ट्रवाद का स्वरूप है, जो कि मानवता के नाम पर एक पैगम्बर को परमेश्वर के समकक्ष पहुँचाने का प्रयास मात्र है। फिर भी पैगम्बर के तंत्र को सफल होने के लिए एक शक्तिशाली राष्ट्र शक्ति चाहिए ताकि एक पैगम्बर को अपना मानवता का चोगा बिना उतारे उसे ईश्वर के बराबर उठाया जा सके। जातीय उच्चता का झंडा फहराना और राष्ट्रीय पागलपन व दूसरों से घृणा और ईर्ष्या की आग भड़काना पैगम्बरपन का एक प्रिय फलदायक

और डरानेवाला तरीका है। सुविधा से समझने के लिए, मुहम्मद के तौर तरीकों को जानने के लिए हदीस का एक उदाहरण दुहराना चाहूंगा : *"जिन दो जातियों जिन्हें ईश्वर ने सर्वोत्तम चुना, वे इसाक़ और इशामेल के वंशज थे। ईश्वर ने इसके (यहूदियों) की सन्तानों की अपेक्षा इशामेल (अरब) की सन्तानों को वरीयता दी। तब ईश्वर ने (इशामेल के वंशजों में) कुरेश कबीले की सन्तानों में मुहम्मद की उत्पत्ति की और फिर उस परमेश्वर ने कुरेशों में से सर्वोत्तम परिवार को चुना और उस परिवार के मनुष्यों में मुहम्मद को सर्वोत्तम चुना।" (जामे तिर्मीज़ खं. 2)*

(1) यह हदीस मुहम्मद पैगम्बर के लिए जातीय स्वभाव और राष्ट्रीय उद्देश्यों को सुस्पष्ट बताती है। कृपया हदीस की निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान दें—

(2) सेमीटिक जातियां, जिसमें यहूदी और अरबी मुख्य हैं, विश्व में सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि वे दोनों ही चुने हुए कबीले हैं।

(3) फिर भी, परमेश्वर ने यहूदियों की अपेक्षा अरबों को उत्तम माना है। यह मुहम्मद का, बाइबिलीय इस घोषणा का उत्तर है जिसमें "अरबों के पूर्वज, ईशामेल को 'एक बांदी' पुत्र कहा गया है।" पुनः बाइबिल कहती है कि यह इसाक था जिसे अब्राहम ने परमेश्वर को बलि चढ़ाने के लिए भेंट किया थी, लेकिन कुरान इसको अस्वीकार करती है और दावा करती है कि वह तो इशामेल था। दोनों ही पवित्र पुस्तकें मानी जाती हैं, परन्तु इनमें से कौन-सी सच कह रही है ?

(4) अरबों में सर्वोत्तम कबीला कुरेशों का है।

(5) उसका निजी परिवार, बानू हाशिम, सर्वोत्तम परिवार है और वह स्वयं (मुहम्मद) सब पारिवारिक जनों में श्रेष्ठतम है।

उपरोक्त कथनों के आधार पर क्या कोई कह सकता है कि पैगम्बरपन सबसे तीव्र राष्ट्रवाद का पुरोधा नहीं है ?

इससे भी अधिक आश्चर्य की बात तो मुसलमानों का यह अटूट विश्वास है कि इस्लाम तो अन्तर्राष्ट्रीय भाई-चारे का दूत है, और मुहम्मद सबसे विनम्र मनुष्य है। वह सबसे विनम्र कैसे हो सकते है जब वे स्वयं को मानव जाति का सर्वोत्तम मनुष्य होने का दावा करता है, विशेष कर जबकि वह अरेबिया के शासक के रूप में उभरा। पूरी सच्चाई इतनी ही नहीं है; वह दावा करता है कि अल्लाह और उसके फरिश्तों ने उसकी पूजा की इसलिए सभी ईमानवालों को अत्यन्त श्रद्धा के साथ उसकी पूजा करना चाहिए।

मुहम्मद ने अपनी लगातार विशिष्टता बनाए रखने के लिए इस्लाम स्थापित किया, और इसे मोमिन (विश्वासी) और काफ़िर (अविश्वासी) के बीच स्थायी संघर्ष के आधार पर एक अत्यन्त तनावपूर्ण विचारधारा दे दी।

'दीन' और 'ईमान' पर आधारित संघर्ष होने के कारण यह तो वर्ग भेद के संघर्ष के सिद्धान्त से भी ज्यादा विनाशकारी है, जिसे कि कार्ल मार्क्स ने एफ. डब्लू. हेगल से लिया, जिसने शायद इसे कुरान से लिया हो।

इस बात को समझने के लिए, पाठकों को इस्लाम के जेरुसलेम के प्रति रवैये को समझना उपयोगी होगा जो कि न केवल यहूदियों का पवित्रतम केन्द्र है, बल्कि यहूदी राष्ट्रवाद और उनकी समस्त परम्पराओं का भी आधार स्तम्भ है।

कुरान के पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में पैगम्बर मुहम्मद ने एक विशाल सेमीटीय राष्ट्र की कल्पना की, जिसमें अरबों की प्रमुख भागीदारी होगी, और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह यहूदियों को कुछ रियायतें भी देना चाहता था :

(1) उसने माना कि परमेश्वर ने यहूदियों को मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ बनाया है। (2 : 115)

(2) यहूदियों के पूर्वज अब्राहम को अरबों सहित मानव जाति का नेता माना।

(3) उसने यह भी घोषणा की कि इस्लाम कोई नया 'दीन' नहीं हैं बल्कि अब्राहम का पुराना यहूदी मत है।

(4) इसके अलावा, सबसे बड़ा फैसला जेरुसलेम को इस्लाम का 'क़िबला', यानी सभी मुसलमानों की नमाज़ पढ़ने की दिशा, मानना था। इसका मतलब यही है कि सभी मुसलमान जैरुसलम को वही सम्मान देंगे, जो उसे यहूदी देते हैं। लेकिन उसमें एक मुख्य शर्त यह थी कि अरेबिया के सभी यहूदी, इस्लाम स्वीकार कर लें जिसका कि धार्मिक और राष्ट्रीय मामलों में यह अर्थ हुआ कि वे कुरानी कानूनों और अरबी परम्पराओं को मानेंगे, न कि 'तोराह' और अन्य यहूदी परम्पराओं को। तत्कालीन प्रमाणों से प्रतीत होता है कि सम्भवतः मुहम्मद को आशा थी कि अरेबिया के यहूदी, इस्लाम और उसे आखिरी पैगम्बर स्वीकार कर लेते हैं तो विश्व भर में बिखरे यहूदी भी उनका अनुसरण करके उसकी शर्तों पर इस्लाम स्वीकार कर लेंगे जिससे उसके सुपर सेमीटीय राष्ट्र का सपना पूरा हो जाएगा। स्पष्ट है कि वह यहूदी विशेष योग्यताओं, जो उन्होंने सदियों से संचित की थी, से विश्वस्त था।

इसके अलावा जीजस क्राइस्ट भी एक यहूदी था जिसकी प्रतिष्ठा ने जैरुसलेम की प्रतिष्ठा को अत्यन्त बढ़ाया था। इस प्रकार डेविड के इस नगर के मुसलमानों के क़िबला बन जाने से, मुहम्मद की प्रतिष्ठा बढ़ेगी, उससे यहूदी और मुसलमान दोनों समुदाय उसकी पैगम्बरी स्वीकार करेंगे। निसंदेह यह एक महत्त्वपूर्ण योजना थी, लेकिन इसकी सफलता-असफलता अरेबिया के यहूदियों का मुहम्मद को पैगम्बर मानने के निर्णय पर निर्भर करती थी। यहूदियों ने उसे पैगम्बर मानने से कठोरता से

मना कर दिया जिसके परिणामस्वरूप न केवल अरेबिया के बल्कि विश्व के यहूदियों को सदैव के लिए पैगम्बर के क्रोध का शिकार बनना पड़ा। मगर कैसे? इस नकारात्मक उत्तर के बाद पैगम्बर ने यहूदियों, जिन्हें उसने 'विशेष लोग' लोग माना था, के प्रति सभी नीतियां बदल दीं। हदीस (मुस्लिम सं. 4366) खं. 3, पृ. 1162) के अनुसार : मैं अरेबिया प्रायद्वीप के सभी यहूदियों और ईसाइयों को निकाल दूंगा और मुसलमानों के सिवा किसी को नहीं छोड़ूंगा।"

और उसने कहा *"है ईमांनवालो! तुम 'यहूदियों' और 'ईसाइयों' को मित्र न बनाओ। ये आपस में एक-दूसरे के मित्र हैं। और जो कोई तुम में उनको मित्र बनाएगा, वह उन्हें में से होगा। निस्संदेह अल्लाह जुल्म करनेवालों को मार्ग नहीं दिखाता।" (5 : 5, पृ. 267)*

ऐसा प्रतीत होता है कि मुहम्मद ने यहूदियों को अपना बहुत बड़ा दुश्मन समझा जो कि उसके धर्म और देश को हानि पहुँच सकते हों। इसलिए वह उनको अरेबिया से निकाल कर ही संतुष्ट नहीं हुआ बल्कि अपने अनुयायियों द्वारा उनकी सदैव के लिए यातनाएं चाहीं। इसलिए उसने जैरुसलेम के प्रति घृणा-प्रेम भरी एक मिश्रित नीति अपनाई ताकि यहूदियों का भाग्य सीमित कर सकें। *"तुम अपना मुँह 'मसजिदे हराम' (काबा) की ओर फेर दो, और जहाँ-कहीं भी तुम हो (नमाज़ में) उसी की ओर अपने मुंह करो।" (2 : 144, पृ. 149)*

इस प्रकार मुहम्मद ने जैरुसलेम को जो भी सम्मान दिया, उसे वापिस ले लिया और इसके बाद वह इस्लाम का क़िबला नहीं रहा। क्यों? इसके उत्तर के लिए नीचे की आयत देखें :

"ये (यहूदी) लोग जिन पर अल्लाह ने लानत की है, और जिस पर अल्लाह ने लानत की, तुम किसी को उसका सहायक नहीं पा सकते। क्या राज सत्ता में इनका कोई हिस्सा है? फिर तो ये लोगों को रत्तीभर भी कुछ न देते।" *(4 : 52-53, पृ. 23)*

इस आयत की कोई और दूसरी व्याख्या करना मुश्किल है। फिर भी इससे यह बात सुस्पष्ट है कि यहूदी अब और अधिक 'आशीष प्राप्त' नहीं, बल्कि 'अभिशापित' लोग हैं। कुरान ने इस दैवी हृदय परिवर्तन के कारणों पर प्रकाश डाला है यानी कि उन्होंने मुहम्मद पर विश्वास नहीं किया। इस आयत का अर्थ निम्नलिखित हदीस के वचनों से और भी सुस्पष्ट हो जाता है।

"आखिरी समय तब तक नहीं आएगा जब तक कि मुसलमान न लड़े और यहूदियों को समाप्त न कर दें.....और जब तक कि यहूदी किसी दीवाल या पत्थर के पीछे छिप न जाएं और यह कहे : 'मुसलमानो-अल्लाह के सेवको!, यहाँ मेरे

पीछे एक यहूदी है, आओ और उसे मारो" (हदीस मुस्लिम, सं. 6985 खं. 4 पृ 1820)

इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि केवल अरेबिया के ही नहीं, बल्कि विश्व भर के मुसलमानों को यहूदियों को जहाँ कहीं भी पाएं उन्हें मारने का आदेश दिया गया है। अरेबिया में यहूदी विरोध तथा सभी इस्लामी पवित्र पुस्तकों व साहित्य में उनके प्रति घृणा से विश्व भर के मुसलमानों के बीच एक विचित्र परन्तु बहुत तीव्र द्वेष पैदा हो गया है। वे मानते हैं कि कुरान ने यहूदियों को जेरुसलम वापिस लौटने और वहाँ अपनी सरकार बनाने की मनाही की हुई है। सवाल यह है कि भला यहूदी जेरुसलेम वापिस क्यों नहीं लौटें ?

मुहम्मद ने इस काम को भी बड़ी पवित्र भाव से किया जिसकी कोई तुलना नहीं है। स्वयं देखिए : *"हे महिमावान् वह (अल्लाह) जो एक रात अपने बन्दे (मुहम्मद) को 'मस्जिदे-हराम' से 'अकसा' की मस्जिद (जेरुसलेम) तक ले गया जिसके वातावरण को हमने वरकत दी है ताकि हम उसे अपनी कुछ निशानियाँ दिखाएं।" (17 : 1, पृ. 506)*

यह उस समय का संदर्भ है जब पैगम्बर अल्लाह के दर्शनों के लिए जारहा था। उससे पहले उस पवित्र यात्रा के अंग के रूप में उसे जेरुसलेम ले जाया गया। इस प्रकार जैरुसलेम, इस्लामी मत में, एक पवित्र स्थान हो गया और उसके साम्राज्य का अंग हो गया।

यदि साफ़-साफ़ कहा जाए तो इतना और जोड़ देना चाहिए कि जैरुसलेम का मुसमलानों के क़िबला चुने जाने का आध्यात्मिक मामले में कोई स्थान नहीं है। यह तो केवल यहूदियों के जीवन में स्थायी प्रवेश पाने का एक राजनैतिक निर्णय था। निम्नलिखित तथ्यों को भी देखिए :

(1) मुहम्मद के बार-बार कहने पर क़िबला की जगह बदली गई क्योंकि *"हम (अल्लाह) आकाश की ओर तुम्हारे रुख की गर्दिश देखते रहे हैं तो हम उसी 'क़िबले' की ओर तुम्हें फेरे देते हैं जिसे तुम (मुहम्मद) पसन्द करते हो (2 : 144, पृ. 149)*

यहाँ एक बात याद रखनी चाहिए कि अल्लाह सदैव वही करता है जो मुहम्मद चाहता है। क़िबला का परिवर्तन मुहम्मद का फैसला था जिसे कि उसने अरबों की भलाई के लिए अल्लाह पर थोपा।

(2) कुरान (2 . 148) बताता है कि प्रत्येक राष्ट्र का अपना-अपना क़िबला होता है। इसलिए अरबों का भी अपना क़िबला प्रारम्भ से ही होना चाहिए। प्रारम्भ में ऐसा नहीं था जिससे पता चलता है कि पहले जैरुसलेम को क़िबला चुनना और फिर बदल देना यह एक राजनैतिक मामला है।

(3) हदीस (मुस्लिम सं. 5903 खंड 4 पृ. 1539) के अनुसार, राष्ट्रीय हितों के आधार पर क़िबला को बदलने के मामले में उमर का हाथ था। इस महान अरब राष्ट्रवादी की परसिया के एक गुलाम ने उसके जातीय पक्षपात के कारण, हत्या कर दी।

(4) पैगम्बर ने अपने अनुयायियों को आदेश दिया कि वे काबा और जेरुसलेम की ओर मुंह करके मलत्याग न करें क्योंकि दोनों ही क़िबला थे। इन हिदायतों का प्रत्येक मुसलमान को मानना जरूरी था, जो कि इन पवित्र स्थानों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना था, जबकि पैगम्बर मुहम्मद ने स्वयं जेरुसलेम के मामले में उपेक्षा की।

"अब्दुल्ला बिन उमर के अनुसार : लोग कहते है कि जब कभी तुम मल त्यागने को बैठो तो तुम कभी अपना मुंह क़िबला या बैत-ए-मुक्कदस (जेरुसलेम) की ओर न करो। मैंने उनसे कहा, एक बार मैं अपने मकान की छत पर गया और मैंने देखा कि अल्लाह का रसूल (मुहम्मद) दो ईटों पर बैठा वेतबैए मुक्कदस (जेरुसलेम) की ओर मुंह कर मल त्याग कर रहा था मगर उसका मुंह पर पर्दा पड़ा हुआ था।" (सही बुखारी सं. 147, खं. 1. पृ. 107)

मुहम्मद के इस कार्य से साफ़ पता चलता है कि उसे जेरुसलेम के प्रति कोई हार्दिक सम्मान न था। यह तो केवल एक राजनैतिक सुविधा थी। इसकी इससे और भी पुष्टि होती है कि साल में दो बार (शबान और ज़िलहज) अरेबिया क़िबला, काबा को, अत्यन्त सम्मान दिया जाता है। जबकि उसकी गुलाब के इत्र और जमज़म के पानी से धुलाई होती है, और उसके आवरण-वस्त्र आदि बदले जाते हैं। लेकिन जेरुसलेम की बेत-उल-मुकद्दस में ऐसा कुछ भी नहीं किया जाता है।

इस इस्लामी पृष्ठभूमि, की दृष्टि से अब यहूदियों का जेरुसलेम के प्रति व्यवहार भी देखिए ताकि सर्वाधिक भयानक संघर्ष की सम्भावना का अनुमान लगाया जा सके, और जो मानव सभ्यता के अन्त का संकेत मिल सके।

डायोस्पोरा यानी यहूदियों का स्वदेश से निर्गमन सबसे पहले 586 बीसी में हुआ। मुहम्मद ने 1200 साल बाद जो कुछ किया, उसमें थोड़ा-सा ही जोड़ा, और वह सही अर्थों में इस श्रेणी में नहीं आता है। हालाँकि यहूदी परसिया, स्पेन और पश्चिम के अन्य देशों में आकर बसे थे, मगर उन सबकी यही अत्यन्त हार्दिक इच्छा रही कि वापिस आकर स्वदेश में बसें, हालांकि उन्होंने विदेशों में अच्छी सम्पत्ति कमाई थी। घर वापिसी यानी जेरुसलेम को वापिसी सभी यहूदियों की इच्छा ही नहीं बल्कि उनके धर्म के कार्यक्रम का एक अंग बन गया। इसी के फलस्वरूप ज़ाइनोनिस्ट आन्दोलन का ज़न्म हुआ जिसका लक्ष्य यह रखा गया। जहाँ यह

यहूदियों के लिए बहुत बड़ी विजय सिद्ध हुई, वहीं दूसरी तरफ यह गैर-वापिसी की इस्लामी अवधारणा पर हमला सिद्ध हुआ जिसके अनुसार धर्मान्ध मुसलमानों ने यहूदियों को उनकी मातृभूमि से सैकड़ों वर्ष पहले निकाल दिया था। यहूदियों की इस्राइल में वापिसी भले ही विश्व में एक ऐतिहासिक घटना हो लेकिन मुसलमानों के लिए यह एक बहुत बड़ी दुर्घटना है क्योंकि यह इस्लामी परम्पराओं के आधारों पर सीधे चोट करती है। क्योंकि इनका मानना है कि अल्लाह ने यहूदियों को शाप दिया है, और इसी के परिणामस्वरूप उन्हें न तो जेरुसलेम में वापिस, और न उन्हें अपनी सरकार बनाने दी जाएगी। इस इस्लामी सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए, कोई भी सोच सकता है कि पैगम्बर मुहम्मद जेरुसलेम पर अपना आध्यात्मिक दावे का अधिकार इस्लामी धर्म के अंग के रूप में क्यों रखना चाहते थे, जबकि उनकी जेरुसलेम में कोई सच्ची श्रद्धा नहीं थी। सुस्पष्ट है कि वे राजनैतिक षड्यंत्र के रूप में यहूदी इतिहास के साथ हस्तक्षेप करना चाहते थे।

इस विषय की गम्भीरता की देखते हुए मैं कहना चाहूंगा कि जेरुसलेम के बगैर यहूदी मत का कोई अस्तित्व नहीं है। इस बात की पुष्टि यहूदी डायस्पोरा के सिद्धान्त से होती है जो कि यहूदी लोगों के धार्मिक, दार्शनिक और राजनैतिक विचारों को व्यक्त करता है। इसका अर्थ यह हुआ कि इज़राइल का देश (और जुदाह) उनके दैवी प्रतिज्ञा की पूर्ति के रूप में है और घर वापिसी की मसीही आशाओं के अनुसार यहूदियों को दे दिया गया। यहाँ यहूदी धर्म और उनकी गैर-वापिसी को इस्लामी कानून के संदर्भ में एक अत्यन्त विनाशकारी संघर्ष खोजा सकता है। मगर विचारणीय यह है कि इस संघर्ष के लिए जिम्मेदार कौन है ? इसका सीधा-सा उत्तर है पैगम्बरपन का सिद्धान्त, जो कि किसी मनुष्य को ईश्वर नामक अलौकिक शक्ति के नाम पर अपनी तीव्र महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करना चाहता है। यहाँ पर संघर्ष दो पैगम्बरों- मौज़िज़ और मुहम्मद के बीच है। कौन सही था? विचारिए! क्या मोज़िज़, जिसने दावा किया कि इस्राइल तो परमेश्वर द्वारा यहूदियों के लिए 'प्रतिज्ञाबद्ध देश' है और इसलिए पूर्णतया उनका ही है; अथवा क्या मुहम्मद का जो यह दावा करता है कि यहूदियों को तो परमेश्वर ने अभिशापित किया हुआ है क्योंकि उन्हें उसकी पैगम्बरपन में विश्वास नहीं था और जिसके परिणामस्वरूप उनकी इज़राइल में न वापिसी, और न उनकी सरकार वहाँ बनने दी जाएगी ?

सच्चाई यह है कि, जैसा हम देखते हैं कि, यहूदी पचास वर्ष के पहले इज़राइल में वापिस आकर बस चुके हैं, और वे अपनी सरकार भी बनाने में सफल हो चुके हैं। इससे एक तरफ यहूदियों को महान सन्तोष रहा है, तो मुसलमान इससे

बेहद क्षुब्ध हैं, और वे बेसब्री से इज़राइल से यहूदियों को निकालने को उत्सुक हैं जिसे वे अपना पहला क़िबला होने का दावा करते हैं ताकि इस्लामी धर्म की प्रतिष्ठा को पुन: स्थापित कर सकें। मुसलमान कुरान को सच्चा सिद्ध करने के लिए हर कीमत पर यहूदियों को इज़राइल से निकालना चाहते हैं। वास्तव में मुहम्मद की यहूदियों को अपमानित करने की उसकी राष्ट्रीय मनोवृत्तियों में हमेशा छिपी हुई थी। उसने यहूदियों की निन्दा की इसलिए नहीं कि वह उन्हें अरबों का प्रतिद्वन्द्वी मानता था, बल्कि इसलिए भी कि वह उनकी जातीय उच्चता के दावे को सहन नहीं कर सका था, जो कि ईश्वरीय चुनाव पर आधारित था। यहूदियों का केवल स्वयं को अब्राहम का वैध वंशज के दावे ने भी इशामेल की सन्तानों-अरबियों के अहंकार को चोट पहुँचाई थी। यहूदियों की सभी सांसारिक क्षेत्रों में सफलता भी ईर्ष्या का एक कारण थी।

इस समस्या का हल ढूंढ़ने के लिए पैगम्बर मुहम्मद ने न केवल अरब जाति को यहूदियों से श्रेष्ठ घोषित कर दिया बल्कि उनकी ऐतिहासिक भावी उन्नति को रोकने के लिए जेरुसलेम पर लगातार अपना दावा पेश किया। उसने अनुभव कर लिया होगा कि अरब लोग कभी भी अपने पुरुषार्थ से यहूदियों की बढ़ती हुई समृद्धि व कीर्ति को नहीं रोक पाएंगे और इसलिए उसने अरबों के लिए (इस्लामी) राष्ट्रवाद पर अधिक बल दिया।

यह योजना पैगम्बर मुहम्मद के राजनैतिक चिन्तन और देशभक्ति को प्रगट करती है। जैसा कि पहले कुरान में कहा जा चुका है, कि मुहम्मद ने स्वयं को (33.21) न केवल अरबों बल्कि सभी जगहों के मुसलमानों के लिए आचरण का आदर्श प्रस्तुत किया। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी मुसलमान को जन्नत पाने के लिए खाने-पीने, पहनने, चलने, फिरने, सोचने, आदि सभी मामलों में मुहम्मद की नकल करनी चाहिए। इस प्रकार हर मुसलमान को, मुहम्मद की तरह यहूदियों से घृणा करनी चाहिए। यहाँ कोई भी समझ सकता है कि इस्लाम एक अरब साम्राज्यवाद है। यह अरेबिया के हितों को साधने के लिए विशेष योजनाबद्ध धार्मिक मत है। ब्रिटिश साम्राज्य के उत्कर्ष काल में, यदि साम्राज्य के किसी क्षेत्र में राजनैतिक उपद्रव होता था, तो आखिर शान्ति स्थापित करने के लिए सेना को एक स्थान से दूसरे क्षेत्र में भेजती थी। लेकिन मुहम्मद द्वारा स्थापित अरब साम्राज्य का स्वरूप इतना अद्वितीय है कि इसके लिए सेना पर निर्भर रहने की जरूरत नहीं है। गैर-मुस्लिम देशों के मुसलमानों का दिमाग इतना धर्मान्ध बना दिया गया है कि यहूदियों से घृणा करना उनका धार्मिक कर्त्तव्य है, और यहूदियों के विनाश के लिए किसी भी काम को करने को वे स्वेच्छा से और अपने खर्चे पर तैयार हो जाएंगें। यह सच कि

अधिकांश मुस्लिम देशों ने अभी भी इज़राइल को, जो स्वीकार नहीं किया हैं, वह उन्हीं धार्मिक विश्वासों का फल है।

पिछले पचास वर्षों में, इज़राइली, अरबों के विरुद्ध अनेक युद्ध कर चुके हैं, और अब भी विशेष कर उनके और सामान्यतया सभी मुस्लिम देशों से सदैव सावधान रहते हैं। यह सामान्यतया समझा जाता है कि अमरीका की तेल में दिलचस्पी, मध्यपूर्व में राजनैतिक अस्थिरता का मूल कारण है और कुछ तो यहाँ तक दावा करते हैं कि पश्चिम ने यहूदियों को वहाँ इसी कारण से बसाया गया है। यह पूर्णतया अज्ञानता है, क्योंकि अमरीका और अन्य पश्चिमी राष्ट्र अरब देशों से स्वतंत्र आर्थिक शक्तियों द्वारा निर्धारित अन्तर्राष्ट्रीय-भावों पर तेल खरीदते हैं। जबकि सच्चाई इसके विपरीत है। यदि अमरीका सहित पश्चिम देश अरेबिया के देशों से तेल न खरीदें तो उनकी आर्थिक स्थिति खराब हो जाएगी।

पुन: संघर्ष का मुख्य कारण दो पैगम्बरों-मोज़िज़ और मुहम्मद में टकराव है। यहूदी अपने प्रतिज्ञाबद्ध देश में जाकर सुरक्षित रहना चाहते हैं जबकि अरब यहूदियों की इज़्राइल में वापिसी अपने धार्मिक विश्वासों व इस्लाम के विरुद्ध मानते हैं तथा बड़ी बेसब्री से चाहते हैं कि सभी यहूदी गैलिली के समुद्र में डूब कर मर जाएं ताकि उनके धर्म की मर्यादा बनी रहे। अरबों की उनके इस्लामी साम्राज्यवाद ने अत्यन्त सहायता की है, और यहूदी अब तक भाग्यशाली रहे हैं जो कि पश्चिमी जगत की सहायता से अपनी सुरक्षा में सफल हो सके हैं।

प्रश्न यह है कि यहूदी कितने दिनों तक अरबों और उनके लाखों साथियों से संघर्ष करने में सफल हो सकेंगे? लेकिन जब वे अपने को राजनैतिक तरीकों से सुरक्षित नहीं रख पाऐंगें, तो वे क्षण अत्यन्त भयंकर होंगे न केवल उनके तथा अरबों के लिए बल्कि समस्त मानव-जाति के लिए भी।

यहूदी जो कि 'तालियोन' के कानून में विश्वास करते हैं, आसानी से नष्ट नहीं होंगे। इस्लाम के प्रति घृणा दिखाने के लिए वे मक्का और मदीना को हिरोशिमा और नागासकी बना देंगे। इससे इस्लामी जिहाद भड़केगी जो कि अल्लाह की नाराजगी के प्रदर्शन का व्यावहारिक स्वरूप है (कुरान 2 : 205)। इससे सारे विश्व में युद्ध की ज्वाला भड़केगी। मैंने जो कुछ ऊपर लिखा है वह आकलन कोरी कल्पना नहीं है, बल्कि वह अरब-यहूदी परस्पर विरोध पर आधारित है जो कि सदियों से चला आ रहा है। इस लगातार संघर्ष का कारण यहूदी मत नहीं हैं क्योंकि एक यहूदी वह व्यक्ति है जो कि जातीय दृष्टि से यहूदी है और केवल यहूदी मत का मानने वाला नहीं है फिर भी वह अपने मत में अन्य मतों के लोगों को धर्मान्तरित करने में निष्ठावान नहीं है। हालांकि यहूदी मत के दरवाज़े उनको खुले है जो इसे

स्वेच्छा से ग्रहण करें। यह तो उस व्यक्ति की ही तीव्र इच्छा है जो यहूदी मत में आना चाहता है।

इसके विपरीत, अल्लाह ने सभी मनुष्यों को इस्लाम स्वीकारना आवश्यक बताया है। वे जो इसे अस्वीकारें वे शैतान की पार्टी के माने जाएंगें और उनको मुस्लिमों (जो कि अल्लाह की पार्टी के है) द्वारा समाप्त कर देना चाहिए। *इस्लाम को नकारना सबसे घृणित अपराध* है और इसी कारण उसे भयंकर दण्ड दिया जा सकता है। अल्लाह स्वयं काफ़िरों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करता है और सबसे भयंकर व अपमानजनक हत्या, बलात्कार लूट और गैर-मुसलमानों को गुलाम बनाने जैसे कार्यों की अनुमति देता है। जब उनको इस्लाम फैलाने का आदेश दिया जाता है तो यह 'जिहाद' यानी 'धर्म युद्ध' कहलाता है। पश्चिम ने इसकी पवित्रता को चार-सौ वर्षों तक क्रुसेड के रूप में झेला है जिसने यूरोप की आबादी को आधा कर दिया था।

यहूदियों के प्रति यह इस्लामी रवैया सबसे निकृष्टतम है। कोई भी मुसलमान, जो कि किसी यहूदी को मार सके उसे जन्नत में जगह जरूर मिलेगी। इस सच्चाई को समझते हुए, कुछ इस्लामी देशों ने यहूदियों के प्रति घृणा अपनी विदेश नीति का मुख्य मुद्रा बना लिया है ताकि उन्हें मुस्लिम जगत का नेतृत्व प्राप्त हो सके। यही कारण है कि इज़राइल मुस्लिम देशों से सजग है और उसे अपनी आर्थिक और सैनिक प्रगति की ओर ध्यान देना होता है। इतिहास साक्षी है कि इज़राइल ने 1981 में, इराक के खिलाफ़ एक हवाई हमला द्वारा उसके ओसीराक से न्यूल्किकल रिएक्टर पर किया था। उसे मुस्लिम जगत में बिना भड़काए युद्ध का संज्ञा दी गई थी। प्रत्यक्षतः था भी ऐसा ही। लेकिन उपरोक्त तथ्यों की दृष्टि में नहीं भी।

एक मानववादी की दृष्टि में एक बार फिर कहना चाहूंगा कि मनुष्य नैतिकता और बुद्धिमत्ता की दृष्टि से इतना समझदार है कि उसे किसी अलौकिक शक्ति के मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार, पैगम्बरपन या इलहाम एक राजनैतिक हथियार होने के कारण मानव जाति के विनाश और आदिकालीनता का स्रोत है; और ये शब्द कुरान और बाइबिल दोनों को समान रूप से लागू होते हैं। ये पुस्तकें अन्तः विरोधाभासों से अत्यन्त ग्रस्त हैं। इसलिए, सत्यमार्ग दर्शन की अपेक्षा वे लोगों को पथ भ्रष्ट अधिक करती हैं। उदाहरण के लिए यहूदियों के विषय में 'गैर-वापिसी' का इस्लामी कानून है। कुरान (5 : 20-23 पृ. 261-262) स्वयं इसका खंडन करती है :

"याद करो जब मूसा ने अपने लोगों से कहा था : हे मेरी जाति वालो! अल्लाह के अनुग्रह को याद करो जो उसने तुम पर किया है। उसने तुम में 'नबी'

पैदा किए और तुम्हें शासक बनाया, और तुम्हें वह दिया जो संसार में किसी को नहीं दिया था।'' (5 : 20)

''हे जातिवालो! तुम पवित्र भूमि में प्रवेश करो जिसे अल्लाह ने तुम्हारे लिए दी है और पीछे न हटो, नहीं तो तुम घाटे में पड़ जाओगे।'' (5 : 21)

''उन्होंने कहा : हे मूसा! उसमें तो बड़े शक्तिशाली लोग हैं। हम तो वहाँ नहीं जा सकते जब तक कि वहाँ से निकल नहीं जाते। हाँ यदि वे वहाँ से निकल जाएं, तो हम प्रवेश करने के लिए तैयार हैं।'' (5 : 22)

''उन डरनेवालों में से दो आदमियों, ने जिस पर अल्लाह का अनुग्रह था, कहा उनके मुकाबले में दरवाज़े से घुस जाओ, जब तुम उसमें घुस जाओगे तो तुम्हें विजयी होंगे।'' (5 : 23)

संक्षेप में इसका यही अर्थ है कि पैलेस्टाइन यानी इज़राइल (और जुडाह) पवित्र देश है जिसे कि अल्लाह द्वारा यहूदियों के लिए सुनिश्चित किया गया है और संघर्ष में उनको विजय का आश्वासन दिया गया है।

आज हथियारों की विपुलता के कारण, इज़राइल केवल अरब-यूहदी समस्या तक सीमित होकर नहीं रह गया है बल्कि इसका मानव जाति के अस्तित्व से भी सम्बंध है। क्योंकि यह संघर्ष वस्तुत: पैगम्बरीय प्रतिस्पर्धा का परिणाम है, इससे कोई भी सुस्पष्टतया समझ सकता है कि पैगम्बरपन का मानव जाति के मार्ग-दर्शन से कोई लेना देना नहीं है। यह तो केवल एक राजनैतिक सिद्धान्त है जो कि इस्लाम के असली चेहरे को विशेष तौर पर दर्शाता है तथा जो अरब साम्राज्यवाद का साधन है। इस पैगम्बरपन की सक्रिय भागीदारी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं मुस्लिम देशों की आन्तरिक समस्याओं में भी देखी जा सकती है।

■ ■

संदर्भ ग्रंथ

1. कुरान मजीद — अनु. मोहम्मद फारूख खां, प्रकाशन मक्तवा अल-हसनात, रामपुर उत्तर प्रदेश (अरबी, अंग्रेजी-हिन्दी-संस्करण) (1980)
2. बाइबिल (हिन्दी) — प्रकाशक बाइबिल सोसाइटी ऑफ इंडिया पाकिस्तान एण्ड सिलोन, इलाहाबाद, (1950)
3. The Hadith:
   a. Sahih Al-Bukhari — Nine volumes (Arabic-English) published by Kitab Bhavan, New Delhi
   b. Jame Tirmzi — Two volumes (Arabic-Urdu) published by Muhammad Ali, Karkhana Islami Kutub, Urdu Bazaar, Karachi.
   c. Sahih Mulsim — Four volumes (English translation) by Abdul Hamid Siddiqi published by Kitab Bhavan, New Delhi.
   d. Sunun Ibn-E-Majah — Two volumes (Arabic-Urdu) published by Farid Bookstall, Urdu Bazaar, Lahore.
   e. Mishkaat Sharif — Three volumes (Arabic-Urdu) published by Farid Bookstall, Urdu Bazaar, Lahore.
4. (*a*) The Hymns of the RigVeda annotated by Prof. Ralph T.H. Griffith.
   (*b*) The Hymns of the Atharvaveda (Vol. 1 & Vol. 2) annotated by Prof. Ralph T.H. Griffith.
   (*c*) The Texts of the White Yajurveda annotated by Prof. Ralph T.H. Griffith.
5. Selections from Hindu Scriptures – Series no. 3 Rigveda, published by Prof. G.C. Asnani.
6. Encyclopaedia Brittanica – 15th edition, 30 volumes.
7. The Story of Civilisation (Our Oriental Heritage, 3 volumes) by W. Durant.
8. Family of Man, the Marshall Cavendish Encyclopaiedia (98 weekly parts).
9. Palestine and the Arab-Israel Conflict by Charles Smith.
10. Israel and the Palestinian Edited by Martin Wright.
11. The Life of Mahomet by Sir William Muir. Vol, Delhi
12. The Bedouin by Shirley Kay.

13. The Two Yemens by Robin Bidwell.
14. History of the Arabs by Philip K. Hitti.
15. Changing India by Rebert W. Stern.
16. The Peacock Throne, The Drama of M ndia by Waldemar Hansen.
17. The New Cambridge History of India (5 volumes) by C.A. Bayly (11.1), M.N. Pearson (1.1.), and P.J. Marshall (11.2), and Kenneth W. Jones (111.1)
18. The Egyptians by Barbara Watterson.
19. The Cambridge History of Africa, Vol. 2 (c. 500 B.C. - A.D. 1050)